योगविद्या

वर्ष 10 अंक 5
मई 2021
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2021

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के रंगीन फोटो:

गंगा दर्शन में होली, 2021

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

वास्तविक तप

श्रीमद्भगवद्गीता में श्री कृष्ण ने स्पष्ट रूप से कहा है कि शरीर को अनावश्यक रूप से प्रताड़ित करना वास्तविक तपस्या नहीं है। शरीर, मन एवं वाणी का संयम ही तप है। अपनी इन्द्रियों को शम, दम और तितिक्षा के अभ्यास से नियंत्रित कीजिए। विचार और विवेक के अभ्यास से अपने मन को नियंत्रित कीजिए। मौन, मित-भाषण एवं मधुर-भाषण के अभ्यास से अपनी वाणी को नियंत्रित कीजिए। यही वास्तविक तप है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 10 अंक 5 मई 2021
(प्रकाशन का 59 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 जीवन का एक निश्चित प्रयोजन
10 जीवन पर एक उड़ती नजर
14 योग और आध्यात्मिक जीवन
20 अक्षय तृतीया की महिमा
22 सेवा योग
31 सेवा का मूल्य
33 योग का अमर संदेश
42 यौगिक जीवनशैली और सकारात्मकता
54 साधना और कर्म

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

जीवन का एक निश्चित प्रयोजन

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

अधिकतर लोगों का, यहाँ तक कि शिक्षित कहे जाने वाले लोगों का भी जीवन में कोई निश्चित उद्देश्य नहीं होता है। वे सागर में उठने वाली लहरों की भाँति इधर-उधर हिचकोले खाते रहते हैं। वे नहीं जानते कि उन्हें क्या करना है। कुछ विद्यार्थी बी.ए. और एम.ए. की उपाधि प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु आगे उन्हें क्या करना है, यह नहीं जानते। उनमें अपने स्वभाव के अनुसार ऐसा निर्णय लेने का सामर्थ्य नहीं होता, जिससे वे एक अच्छे व्यवसाय का चुनाव कर सकें जो उन्हें जीवन में समृद्धि तथा सफलता प्रदान करे। वे आलसी हो जाते हैं। वे ऐसे सभी के कार्यों के लिए अयोग्य हो जाते हैं जिनमें साहस, विचार, युक्ति, उत्साह तथा कौशल की आवश्यकता हो। वे अपना समय व्यर्थ गँवाते हैं तथा अपनी जीवन यात्रा को उदासी, निराशा तथा

दु:ख के साथ समाप्त करते हैं। उनमें ऊर्जा है, बुद्धि है, परन्तु उनका कोई निश्चित उद्देश्य या प्रयोजन नहीं है। उनका कोई आदर्श नहीं है। उनके पास जीवन का कोई कार्यक्रम नहीं है। इसलिए उन्हें विफलता का मुँह देखना पड़ता है।

क्या तुमने कभी इस मानव जीवन की महत्ता और महानता पर विचार किया है? क्या कभी इस बात को समझने का प्रयास किया है कि मानव जन्म एक अनमोल उपहार, एक दिव्य विरासत है? क्या तुम यह अनुभव नहीं करते कि जीवन किसी विशिष्ट उद्देश्य को पूरा करने के लिए बना है? वास्तव में यह एक उदात्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही बना है – दिव्यता, पूर्णता तथा शाश्वत शान्ति एवं आनन्द की प्राप्ति।

आप सभी यह जानते हो कि जीवन मात्र श्वास लेने, खाने-पीने, सोने-जागने, सोच-विचार करने और अनुभव करने की प्रक्रिया नहीं है। जीवन का प्रयोजन यह नहीं कि तुम बिना किसी ठोस उपलब्धि को प्राप्त किए मर जाओ। तुम्हारा जीवन तभी सफल है जब तुम मानसिक समत्व और ब्रह्म-ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयास करते हो और साथ ही मानवता के कल्याण के लिए सेवा-कार्य करते हो। स्वादिष्ट व्यंजन खाना, सुन्दर वस्त्र पहनना, बढ़िया गाड़ी में घूमना, आलीशान बंगले में रहना या पार्टियों में जाना सच्चा जीवन नहीं है। जिसका जन्म ईश्वर की छवि के रूप में हुआ है, उस मनुष्य के जीवन का यह प्रयोजन कभी नहीं हो सकता।

सभी को स्पष्टता से अपने जीवन का एक निश्चित लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए, और फिर कार्य की रूपरेखा तैयार करनी चाहिए, जो उस उद्देश्य को प्राप्त करने में सहायक हो। उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए तुम्हें कड़ी मेहनत करनी चाहिए। तुम्हारा एक आदर्श होना चाहिए और प्रत्येक क्षण उस आदर्श के आधार पर जीने का प्रयास करना चाहिए। आत्मबल द्वारा तुम अभी, इसी समय अपने आदर्श को प्राप्त कर सकते हो या लड़खड़ाते कदमों के साथ चलते हुए दस वर्षों में। लक्ष्य निर्धारण से बहुत अन्तर पड़ता है। इसलिए एक आदर्श तथा उद्देश्य अवश्य होना चाहिए। तभी तुम अपनी इच्छाशक्ति का विकास कर सकते हो।

यदि व्यक्ति गृहस्थ जीवन की सभी जिम्मेदारियों को सफलतापूर्वक समाप्त कर चुका है, बेटे अपने पैरों पर खड़े हो गये हैं, सभी बेटियों की शादी हो गई है, तो फिर जीवन के शेष वर्षों को आध्यात्मिक खोज, धार्मिक शास्त्रों के अध्ययन तथा ईश्वर-मनन में व्यतीत करना चाहिए। बहुतों के मन में कोई निश्चित विचार नहीं होता है कि वे क्या करने जा रहे हैं। सेवा निवृत्ति के पश्चात् भी वे कोई दूसरा व्यवसाय अपना लेते हैं। वे फिर भी लोभी ही रहते हैं। जीवनपर्यन्त नोट गिनते रहते हैं और पोतों-परपोतों के विचारों में मग्न रहते हैं। वास्तव में ऐसे लोगों की स्थिति बहुत दयनीय है। धन्य है वह व्यक्ति, जो मानव-सेवा तथा अपने सभी उत्तरदायित्वों को पूरा करने के पश्चात् अपना पूरा समय एकान्त स्थान पर अध्ययन, उपासना तथा ध्यान में व्यतीत करता है।

भौतिक सुख-सम्पदा की नश्वरता और व्यर्थता

मनुष्य अपना अधिकतर समय भौतिक सम्पदा जुटाने में ही लगा देता है। इससे उसे केवल पीड़ा और दु:ख की ही प्राप्ति होती है। उसे कम-से-कम अपने जीवन के अन्तिम वर्षों को प्रार्थना तथा मानव सेवा में लगाना चाहिए ताकि उसकी आत्मा का उत्थान तथा शुद्धिकरण हो।

अहंकार और सांसारिक वासनाओं का जन्म अज्ञान में होता है। क्या भौतिक सुख तुम्हें वास्तविक आनन्द प्रदान करते हैं? क्या मनुष्य-निर्मित सुख-सुविधाओं से ही आत्मा का विकास संभव है? क्या सिर्फ भौतिक संपन्नता ही आपको धीरज, साहस, शान्ति और आनन्द प्रदान करती है?

प्रिय आत्मन्! कामनाओं के अनन्त चक्रव्यूह में फंसकर जीवन के वास्तविक उद्देश्य को कहीं भूल मत जाना। असत्य को सत्य और अनित्य को नित्य मान लेने तथा जीवन के सबसे बड़े कर्त्तव्य, आत्मनुभूति को विस्मृत कर देने से बड़कर कोई भूल नहीं है। इससे बड़ी क्या भूल है, इससे बड़ी क्या त्रासदा है कि मनुष्य इन्द्रिय-लोलुपता, भावनात्मक अस्थिरता और विवेकहीन मानसिकता के क्षुद्र स्तर पर जीने से ही संतुष्ट है!

जब तुम बच्चे थे तब तुम लाचार थे। जब तुम बीमार पड़ते हो तब तुम लाचार होते हो। जब प्राकृतिक त्रासदियाँ, जैसे बाढ़, भूकम्प और बवण्डर आदि आते हैं तब भी तुम लाचार होते हो। जब तुम वृद्ध हो जाते हो तब भी तुम लाचार होते हो। फिर तुम्हें इतना अभिमान और अहंकार क्यों है?

अपने भ्रमों से ऊपर उठो और अपने वास्तविक स्वरूप को विवेक, वैराग्य और आत्म-निरीक्षण द्वारा जानो। तभी तुम इस शरीर और मन के परे पहुँचकर ईश्वर को प्राप्त कर सकते हो, मुक्ति एवं आनन्द पा सकते हो। पवित्रता और सदाचार ही शान्ति और ब्रह्म-ज्ञान का राजमार्ग है। सत्य के प्रति निष्ठावान् रहो और दिव्य सद्गुणों से कभी पीछे मत हटो। अपने अन्दर करुणा, सहिष्णुता, क्षमा और प्रेम जैसे कोमल सद्गुणों का निष्ठापूर्वक विकास करो। हमेशा निष्कपट रहो। बिना निष्कपटता के सभी कुछ खोटा है।

सत्य, साहस और विवेक के साथ अपने जीवन का निर्वाह करो। हाथी पर सवार होकर किसी शेर का शिकार करना या किसी शहर को तहस-नहस कर देना पराक्रम या वीरता के कार्य नहीं हैं। अपने मन और इन्द्रियों को वश में करना, अपने क्रोध, कामोत्तेजना और अहंकार पर विजय प्राप्त करना ही वास्तविक शौर्य के कार्य हैं।

अपने दिव्य स्वभाव को उभरकर सामने आने दो। स्वयं को यह नश्वर शरीर मत मानो। नाम और रूप की चकाचौंध में अपने लक्ष्य को दृष्टि से ओझल मत होने दो। अपनी बुद्धि पर अधिक अभिमान मत करो। 'मैं अंग्रेज हूँ, मैं भारतीय हूँ; मैं काला हूँ, मैं गोरा हूँ; मैं महान् हूँ, मैं तुच्छ हूँ; मैंने यह किया, मैंने वह किया; मैं ईसाई हूँ,

मैं हिन्दू हूँ, मैं मुसलमान हूँ, मैं जैन हूँ, मैं पारसी हूँ' – इस तरह की सीमित करने वाली भावनाओं से ऊपर उठो। इस तरह की भावनाएँ अज्ञान की परिचायक हैं।

पूर्व तथा पश्चिम की संस्कृति का रूप

भारत के ऋषि-मुनियों और साधुओं की पूर्वीय संस्कृति और पश्चिमी जगत् की संस्कृति में जमीन-आसमान का अन्तर है। मूल अन्तर यह है कि पश्चिम में लोग अपनी इच्छा शक्ति तथा स्मृति का विकास केवल भौतिक प्रगति तथा समृद्धि के लिए करते हैं। इसके परे की जिन्दगी की वे पूरी तरह अवहेलना कर देते हैं। वास्तव में यह एक गंभीर भूल है। भारत के योगी अपनी इच्छा शक्ति तथा स्मृति का विकास आध्यात्मिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए करते हैं। उनका लक्ष्य हमेशा आत्म-साक्षात्कार होता है। वे अपनी सिद्धियों का प्रदर्शन इस उद्देश्य से करते हैं कि उनके शिष्य अच्छी तरह समझ जायें कि आत्मा में एक उच्च जीवन है और मात्र वही हमें वास्तविक आनन्द तथा अमरता प्रदान कर सकता है। वे अपने शिष्यों को जोरदार शब्दों में कहते हैं – *न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्त्वमानशु* – न तो कर्मों से, न सन्तान से और न ही धन से, बल्कि केवल त्याग से अमरत्व की प्राप्ति हो सकती है। वास्तविक आनन्द तो भूमा में है, उसमें है जो अनन्त या अप्रतिबन्धित है। नाशवान् वस्तुओं में आनन्द नहीं है। वास्तविक, परम शान्ति केवल परमात्मा में है। परमात्मा को जानने और उसे प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

पाश्चात्य लोगों को आध्यात्मिक संस्कृति की, जो सभी संस्कृतियों का आधार है, अवहेलना नहीं करनी चाहिए। कुछ हद तक भौतिक समृद्धि प्राप्त की जा सकती है, परन्तु इसके साथ ही आध्यात्मिक पक्ष का भी विकास करना चाहिए। सभी संस्कृतियों तथा उद्यमों का आध्यात्मिक आधार होना चाहिए। यह महत्त्वपूर्ण है। यदि इस पक्ष को पूरी तरह से नजर-अन्दाज कर दिया जाये, तो ऐसी संस्कृति वास्तव में कोई संस्कृति नहीं है।

शौनक अंगीरस मुनि के पास गये और पूछा, 'पूज्य गुरुदेव! ऐसी कौन-सी सर्वोच्च विद्या और संस्कृति है, जिसे जान लेने से दूसरी सभी संस्कृतियों का ज्ञान हो जाता है?' अंगीरस ने उत्तर दिया, 'वह ब्रह्म विद्या या परा विद्या है, आध्यात्मिक संस्कृति या आत्म विज्ञान है।' सभी संस्कृतियों का आधार आत्मा की संस्कृति ही है। इसलिए मैं पश्चिम के दार्शनिकों का ध्यान पूर्वीय संस्कृति के इस असाधारण पक्ष की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ। तभी उनको भरपूर सफलता तथा परम आनन्द की प्राप्ति होगी।

कुछ भारतीय गुरुजन भी जीवन के भौतिक पक्ष की पूरी तरह से अवहेलना कर देते हैं और तामसिक तप करते हैं। यह भी उचित नहीं है। गीता में भगवान कृष्ण ने इसका निराकरण किया है। किसी भी चीज की अति सदा अवांछित होती है। एक स्वास्थ्यप्रद मिश्रण बहुत आवश्यक है। रानी चुडाला और राजा जनक में यह सुन्दर मिश्रण प्रत्यक्ष था।

ऋषि-मुनियों द्वारा कहे गए महावाक्यों पर विचार करो। तुम्हारा वास्तविक स्वरूप सदा-मुक्त और आनन्दमय आत्मा है। उस महान् आत्मा के आगे भला तुम्हारा मन, अहंकार, अल्प बुद्धि, थोड़ा-सा ज्ञान और क्षणभंगुर शारीरिक सुन्दरता क्या मायने रख सकती है?

योग और अध्यात्म

जीवन योग के अभ्यास के लिए मिला है। योग दिव्य जीवन है। अपने हृदय को नि:स्वार्थ सेवा और उदारता से पवित्र करो। ईश्वर की सर्वव्यापकता का अनुभव करो। केवल उस प्रभु को ही सब जड़ और चैतन्य जीवों में देखो। सभी प्रकार के मतभेदों को दूर करो, सभी से प्रेम करो। सभी की मदद करो और अपने हृदय में करुणा की भावना पैदा करो। घमण्ड और स्वार्थ को तिलांजलि दे दो। सारे भ्रमों, भयों और सन्देहों को दूर कर दो।

जीवन छोटा है। समय निकला जा रहा है। तुम्हें व्यावहारिक बनना होगा। ईश्वर में दृढ़ विश्वास रखो। जीवन के वास्तविक उद्देश्य को कभी मत भूलो। जब तक तुम ब्रह्मज्ञान प्राप्त न कर लो और वह ज्ञान तुम्हारे जीवन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति न बन जाए तब तक रुको नहीं, अनवरत आगे बढ़ते रहो!

मैं तुम्हारे सामने एक महत्त्वपूर्ण बात रखना चाहता हूँ। मेरे शब्दकोष में 'असम्भव', 'कठिन' या 'कमजोरी' जैसे कोई शब्द नहीं हैं। जो लोग अपनी इच्छा शक्ति का विकास करना चाहते हैं, उन्हें भी अपने शब्दकोष से इन शब्दों को निकाल देना चाहिए। ये सब एक कमजोर और कायर मनुष्य की अभिव्यक्तियाँ हैं। शेर बनो, आध्यात्मिक वीर बनो। तुम्हारी मात्र इच्छा शक्ति से पर्वत चकनाचूर हो जाने चाहिए। संकल्प मात्र से सागर की सभी लहरें शान्त हो जानी चाहिए। ईसा मसीह ने ऐसा किया था और तुम भी ऐसा कर सकते हो। एक व्यक्ति ने जो भी प्राप्त किया है, यदि दूसरे चाहें, तो वे भी प्राप्त कर सकते हैं। यह प्रकृति का एक महान् नियम है। प्रकृति माँ अपक्षपाती है। वह अपने सभी बच्चों को एक नजर से देखती है।

इसलिए कभी नकारात्मक विचारों को प्रश्रय मत दो। उस आत्मा की महिमा, वैभव तथा शक्ति को समझो, जो तुम्हारे मन, विचार तथा इच्छा शक्ति की पृष्ठभूमि में है। उस अव्यक्त, सर्वव्यापक सत्ता की उदारता तथा अनश्वर प्रकृति को समझो। इस बात को जानो कि यह आत्मा सभी प्रकार के आनन्द, ज्ञान, शक्ति, शान्ति तथा प्रसन्नता का भण्डार गृह है। तुम सूर्यों के सूर्य, प्रकाशों के प्रकाश, सम्राटों के सम्राट्, दिव्यों में दिव्य, देवों के देव हो। तुम सत्य हो, तुम ब्रह्म हो, तुम वह शुद्ध अनश्वर निर्विकार आत्मा हो जो इस पूरे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। अपनी दिव्य शक्ति को पहचानो। ब्रह्म की महिमा को पहचानो। अपनी शाश्वत स्वतंत्रता और सच्चिदानन्द प्रकृति को, अपने केन्द्र, आदर्श, लक्ष्य तथा विरासत को पहचानो। प्रकाश, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द के सागर में विश्राम करो। गौरवमय उपनिषदों के महावाक्य, 'तत् त्वम् असि' के महत्त्व को समझो और वास्तव में जीवन में अनुभव करो।

धूल पर धूल डालने से क्या लाभ?

राँका-बाँका पति-पत्नी थे। बड़े ज्ञानी, भक्त और प्रभु-विश्वासी थे। सर्वथा नि:स्पृह थे। भगवान ने उनकी परीक्षा करने की ठानी। एक दिन वे लकड़ी लाने जंगल जा रहे थे। पति आगे-आगे चल रहे थे, पत्नी पीछे आ रही थी। राह में राँका को किसी चीज की ठोकर लगी। उन्होंने देखा, सोने की मोहरों से भरी थैली खुली पड़ी है। वे उसे देखकर जल्दी-जल्दी धूल डालकर उसे ढकने लगे। इतने में बाँका आ पहुँची। उन्होंने पति से पूछा, क्या कर रहे हैं?

राँका ने पहले तो नहीं बताया, पर विशेष आग्रह करने पर कहा – सोने की मोहरे थीं, मैंने सोचा, इन पर कहीं तुम्हारा मन न चला जाए, इसलिये इन्हें धूल डालकर ढक रहा था।

बाँका ने हँसकर कहा – वाह, धूल पर धूल डालने से क्या लाभ? सोने और धूल में भेद ही क्या है, जो आप इन मोहरों को ढक रहे हैं।

जीवन पर एक उड़ती नजर

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

बहुत-से ऐसे जिज्ञासुओं को मैंने देखा है जो किसी-न-किसी कारण से अपने को योग-मार्ग के लिए अनुपयुक्त समझते हैं। यह भावना उनमें क्योंकर है, यह जानने के लिए हमें उनकी मानसिक बनावट का इतिहास जानने की आवश्यकता होगी। बहुत-से लोग मैंने ऐसे देखे हैं, जो बुद्धि से यह समझते हैं कि यह कार्य ठीक है या करना चाहिए, पर जब जीवन में व्यवहार करने की बात आती है तो वे पीछे रह जाते हैं। ऐसा क्यों है? हममें उद्यम और उत्साह का अभाव क्यों है? और इसे कैसे दूर कर सकते हैं? मनोवैज्ञानिक के पास आप जायेंगे तो वह आपसे सौ प्रश्न करेगा, प्रिय और अप्रिय। दस-बीस दिन आपको अपने यहाँ आने को भी बोलेगा। पैसा खर्च होगा सो अलग। पर मैं आपसे कहूँगा कि अपने चिकित्सक आप स्वयं बन जाइए। साधना मनुष्य के अन्दर के सब दोषों को दूर करने में समर्थ है। इस बात को आप तर्क, बुद्धि, उपयोगिता, मनोविज्ञान अथवा विज्ञान के दृष्टिकोणों से समझिए। यदि आप स्वयं समझने के दृष्टिकोण को सामने रखकर समझना चाहेंगे तो अवश्य आपको सब कुछ समझ में आ जाएगा। आत्म-चिन्तन से आपकी सारी शंकाओं का एक-एक कर समाधान हो जाएगा।

तथापि कुछ लोग ऐसे हैं, जो कम्युनिस्ट की तरह केवल कुतर्क करते हैं, और कहीं वे स्वयं धर्म से प्रभावित न हो जाएँ, इस भय से सुरक्षा की एक मानसिक दीवार तैयार करके सत्संग में आते हैं। धर्म में त्रुटियाँ खोजना, उन्हें गलत सिद्ध करना, मूर्खतापूर्ण बतलाना, यही उद्देश्य लेकर वे आते हैं। जब तक दुनिया में मान-सम्मान और धन प्राप्त रहता है, ऐसे लोग अपने को भूले रहते हैं। पर जब निराशा, हानि, अपमान और दु:ख आता है, तब भगवान की शरण लेते हैं। भगवान के साथ भी उनका 'व्यापार' का ही भाव रहता है।

'दु:ख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय', लेकिन ऐसा कब तक चलेगा? जब तक शरीर और इन्द्रियाँ बलवान् हैं, आप केवल भोगों में लगे रहेंगे और जब शरीर बेकार और कमजोर हो जाय, सरकार भी अपनी नौकरी से आपको अलग कर पेन्शन दे दे, तब आप धर्म और अध्यात्म की ओर झुकेंगे क्या? भाई बुढ़ापे और भविष्य की चिन्ता सभी करते हैं। बुरे दिनों के लिए कुछ पूँजी बचा कर रखते हैं। कुछ आध्यात्मिक पूँजी भी यदि अभी से आप कमा कर रखते हैं तो क्या हर्ज है? साधना करने में कोई ज्यादा समय तो लगता नहीं। प्रतिदिन आधा घण्टा समय भी दिया जाय तो बहुत है। योग के नाम से घबराएँ मत। योग-मार्ग मनुष्य को सुख, शान्ति एवं सफलता का रास्ता बतलाता है। शारीरिक आरोग्य प्रदान करता है।

शारीरिक रोगों का उपचार तो करता ही है, मानसिक कष्टों और सभी प्रकार के मानसिक रोगों को भी दूर करता है।

मनुष्य को भगवान ने 'मन' नामक एक ऐसी चंचल और बेलगाम वस्तु दे दी है, जो दिन-रात अनेक प्रकार की अच्छी-बुरी इच्छाएँ करती रहती है। मनुष्य जितनी इच्छाएँ करता है, उसका अल्पांश ही शायद वह जीवन में पूरा कर पाता है। बाकी सब इच्छाएँ अपूर्ण और अतृप्त ही रह जाती हैं। इनका क्या होगा? क्या ये आपके

अवचेतन मन में जमा होकर फोड़े का रूप नहीं धारण करेंगी? बीमारियों के रूप में प्रकट नहीं होंगी? मानव शरीर में जब बहुत विकार इकट्ठे हो जाते हैं, तो वे बाहर निकलने के लिए कभी फोड़े-फुन्सी, कभी ज्वर, कभी दस्त, कभी कफ और वायु का रूप धारण कर बाहर निकल जाते हैं। प्रसव-पीड़ा की तरह कुछ पीड़ा तो उस समय जरूर होती है, पर शरीर पुन: निर्मल व रोग-विकार रहित होकर धीरे-धीरे शक्तिवान् बन जाता है। इसी प्रकार हमारे मन में जो निराशा, चिन्ता, वैमनस्य, क्रोध, घृणा, इत्यादि के भाव उठते हैं, उन्हें किसी-न-किसी प्रकार का निकास चाहिए ही। यदि इन्हें मन ही में दबा दिया जाय, तो जरूर शरीर और मन को हानि पहुँचाएगा।

जब मनुष्य को क्रोध आता है तो वह किसी पर बरस कर, डाँट-डपट, मार-पीट कर शान्त हो जाता है। ऑफिस में किसी से झगड़ा हो जाय तो अफसर घर में आकर नौकरों, स्त्री आदि पर बिगड़कर अपने को शान्त कर लेता है। यह एक प्रकार से अच्छा ही है, क्योंकि जो सब्र कर अपनी भावनाओं को भरसक दबा लेते हैं, उनको अनेक तरह की भयंकर बीमारियाँ हो जाती हैं तथा जीवनी-शक्ति शनै:-शनै: क्षीण होने लगती है। इसलिए इन अतृप्त और अपूर्ण वासनाओं को मन में संजोकर रखना अच्छा नहीं। पर क्रोध आने पर किसी को क्रोध का शिकार बनाकर क्रोध निकालना या घृणा होने पर किसी को लक्ष्य बनाकर घृणा वृत्ति को प्रकट कर देना, ये वास्तव में स्वास्थ्यकारी नहीं। धर्म और योग इन्हें निकास देने के लिए एक सुन्दर, स्वास्थ्यकारी, प्रगतिशील और पूर्णत्व की ओर ले जाने वाली विधि बतलाता है। आप स्वयं परीक्षा करें।

मनुष्य के शरीर और मन में जो दोष हैं, उनको हटाने और निकालने में योगाभ्यास से बहुत मदद मिलती है। साधनाएँ मनुष्य को योग्य और पूर्ण बनाने का माध्यम हैं। साधकों में यह गलती प्राय: पाई जाती है कि वे साधन को ही साध्य समझने लग जाते हैं। अपने विचारों और भावनाओं में कट्टरता लाकर अपने विकास में स्वयं बाधक बन जाते हैं। प्रगति के इच्छुक साधक को मननशील और उद्यमी होना चाहिए।

वे लोग जो अब तक किसी प्रकार की साधना नहीं करते आए हैं, उन्हें एक संक्षिप्त और सरल साधना का कार्यक्रम बना लेना चाहिए। कुछ साधना इन्हें अभी से प्रारम्भ कर देनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अपने को नास्तिक समझता है या धर्म-कर्म कुछ नहीं करता, तो इसका यह मतलब नहीं कि वह वास्तव में अधार्मिक है। सुयोग्य अवसर और प्रेरणा के अभाव में ही अधिकतर लोगों को इस मार्ग में रुचि पैदा नहीं हो पाती। हर एक मनुष्य भिन्न-भिन्न वातावरण में पलता है तथा कुछ गुण उसमें वंशानुगत होते हैं। इसी कारण, सबका झुकाव या आकर्षण किसी एक विषय या कर्म की ओर समान रूप से नहीं होता। इसीलिए कुछ लोग जल्दी ही धर्म और योग की तरफ झुक जाते हैं और कुछ नहीं।

योग-मार्ग जीने की एक पद्धति बतलाता है। यह बात यदि किसी की समझ में आ जाए, तो वह योग की ओर बिना झुके नहीं रह सकता। लोगों का झुकाव धर्म और योग की ओर इसलिए नहीं होता कि जीवन में इसकी आवश्यकता वे महसूस नहीं करते। लोगों ने धर्म को पूजा-पाठ और कर्मकाण्ड का रूप देकर व्यावहारिक जीवन से अलग कर दिया है, पर वास्तव में संसार और अध्यात्म दो अलग वस्तुएँ नहीं हैं। जीवन के विकास-क्रम में दोनों का ही स्थान है। दोनों में उतना ही सम्बन्ध और अन्तर है, जितना हमारे बचपन के शरीर और आज के शरीर में। शरीर, मन, भावना और बुद्धि सबका ही विकास होता है। अध्यात्म और योगाभ्यास के द्वारा न केवल अन्नमय कोष, बल्कि मनुष्य के अन्य सूक्ष्म कोषों का भी विकास होता है।

आध्यात्मिक मार्ग पर चलने का मतलब है अपने जीवन को अपने हाथ में लेकर पहले उसके व्यवहार, गति, नियम इत्यादि को समझने की चेष्टा करना। फिर उसे एक निश्चित साँचे में ढालना। एक लक्ष्य लेकर उसी दिशा में आगे बढ़ते हुए अपनी शक्ति और प्रतिभाओं का प्रकटीकरण करना है। धर्म हमें आत्म-साक्षात्कार का मार्ग बतलाता है। आत्मा का साक्षात्कार क्या है? अपने आपको जानना, समझना, करना और सब करके भी मौन रहना।

ध्वनि पैदा करनी हो, तो आघात कीजिए। दरवाजा खुलवाना हो, तो खटखटाइए। कुछ जानना और पाना हो तो खोजिए, प्रयास कीजिए। कर्म और पुरुषार्थ की तलवार आपके हाथ में है। इससे गला काटिए या बन्धन की रस्सी। शरीर, मन और बुद्धि – ये तीन उपहार आपको मिले हुए हैं। चाहे इनसे अपने को दु:ख के गर्त में गिराइए या शक्ति, आनन्द, निर्भयता और ज्ञान की प्राप्ति कीजिए। आपका जीवन आपके हाथ में। चाहे तो बनाइए या भोग और फजूल बातों में खर्च कर डालिए।

योग और आध्यात्मिक जीवन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय में जिस योग की शिक्षा दी जाती है, वह समग्र योग है। समग्र योग केवल शारीरिक या मानसिक अभ्यास नहीं, बल्कि यह सम्पूर्ण मानव व्यक्तित्व के विकास से सम्बन्ध रखता है, जिससे शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक शान्ति की प्राप्ति तो होती ही है, साथ ही मनुष्य के जीवन में अध्यात्म के सूर्य का भी उदय होता है।

योग का वास्तविक प्रयोजन जीवन में प्रवीणता और उत्तमता प्राप्त करना है। लेकिन इस प्रवीणता और उत्तमता को प्राप्त करने के लिए एक तपोमय और साधनामय जीवन बिताने की आवश्यकता होती है। जब तक साधना के द्वारा हम अपने जीवन को तपाते नहीं हैं, जीवन में परिवर्तन नहीं लाते हैं, तब तक उपलब्धि भी नहीं होती है। सोने के ढेले को लेकर अग्नि में तपाया जाता है और जैसे-जैसे वह सोना अग्नि में तपता है, वैसे-वैसे उसकी अशुद्धियाँ एवं विकार दूर होते हैं और वह अपने असली, शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करता है। एक बार जब सोने से अशुद्धियाँ दूर हो जाती हैं, तब उसे कंगन, अँगूठी, हार या मुकुट, कोई भी रूप दिया जा सकता है।

इसी प्रकार मनुष्य के लिए भी यह आवश्यक है कि वह स्वयं को तपाये। तपे बिना जीवन में कुछ उपलब्धि नहीं होती। अगर हमसे कोई पूछता है कि जीवन का प्रयोजन क्या है तो हम एक ही उत्तर देते हैं – स्वयं को तपाना। खुद को तपाकर अपने भीतर की अशुद्धियों, सीमाओं और अव्यवस्था को दूर करना, यह जीवन का प्रयोजन है। यही मनुष्य की साधना होनी चाहिए। जब यह मनुष्य की साधना बनती है, तब मनुष्य उत्तम मानवीय गुण, उत्कृष्ट व्यक्तित्व, स्पष्ट मानसिकता और उदार चरित्र प्राप्त करता है, उसके पहले नहीं। भले ही हमने इस मानव देह में जन्म लिया है, लेकिन मानव देह की उत्तमता का अनुभव नहीं कर पाए हैं, इस शरीर के भीतर छुपी प्रतिभा की थाह नहीं ले पाए हैं। जब तक हम खुद को जानेंगे नहीं, हम कैसे कह सकते हैं कि हम एक सच्चे मानव हैं?

व्यक्ति का स्वभाव है कि वह आराम की खोज करता है। जो व्यक्ति अपने जीवन में आराम की खोज करता है, वह भोगी कहलाता है। और जो व्यक्ति तपस्या को जीवन का आधार बनाता है, वह योगी कहलाता है। आराम की खोज करने का मतलब होता है संघर्ष से दूर भागना, बिना कोई प्रयास किए सब कुछ प्राप्त करने की इच्छा रखना। जब बिना किसी प्रयास के हम सब कुछ प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं, तब मन, शरीर और इन्द्रियाँ ढीली पड़ जाती हैं। उनमें स्फूर्ति और शक्ति की बजाय आलस्य आ जाता है,

और आलस्य के कारण व्यक्ति कर्म से विमुख हो जाता है। लेकिन जब यह ज्ञान और सजगता आ जाए कि हमें अपने जीवन में कुछ पाना है, अपनी प्रतिभाओं और क्षमताओं को जगाना है, उसके लिए श्रम तथा साधना करनी है, तब पुरुषार्थ की वह प्रक्रिया भोगी मनुष्य को एक योगी के रूप में परिवर्तित कर देती है। यह तपना ही भारतीय आध्यात्मिक विचारधारा का आधार है। जो व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन को सही तरीके से जीना चाहता है, उसे कुछ ऐसे सर्वांगीण उपायों को अपनाना पड़ता है जो उसे अपने व्यवहारों, कर्मों और भावनाओं के प्रति सजग बना सकें।

स्वाध्याय

अध्यात्म का प्रथम चरण है स्वाध्याय। स्वाध्याय का मतलब होता है स्वयं को जानने का प्रयास करना – हमारे विचार कैसे हैं, हमारा चिन्तन कैसा है, हमारे चिन्तन में संकीर्णता है या व्यापकता, स्वार्थ की भावना है या निष्काम भावना, हमारे जीवन में कौन-कौन से दोष हैं। तुलसीदास जी से जब पूछा गया कि आप कौन हैं, क्या करते हैं, तब उन्होंने जवाब दिया – *मो सम कौन कुटिल, खल, कामी।* यह नहीं कहा कि मैं संत हूँ, महात्मा हूँ, ज्ञानी हूँ, भक्त हूँ, बल्कि कहा कि इस संसार में मेरे जैसा कोई कुटिल, खल और कामी नहीं है।

क्या यह केवल एक वाक्य है जो एक साधु कहता है? नहीं, यह तो अपने आन्तरिक जीवन की पहचान है, क्योंकि जब तक मनुष्य का मन तमोगुणी अवस्था में रहता है, उसके भीतर कुटिलता, काम, लोभ, छल, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, सब का स्थान रहेगा। लेकिन जैसे-जैसे मनुष्य की इस तमोगुणी प्रवृत्ति में परिवर्तन आता है और उसका मन शुद्ध तथा सात्त्विक होता जाता है, वैसे-वैसे जीवन के इन नकारात्मक और संकीर्ण पक्षों से ऊपर उठकर वह मुक्त होता और अपनी प्रतिभा,

पवित्रता एवं शान्ति से जुड़ता है। स्वाध्याय का यही अर्थ होता है, खुद को जानने और समझने का प्रयास कर अपने उत्थान हेतु कर्म करने के लिए तत्पर होना।

सेवा

आध्यात्मिक जीवन का दूसरा आधार है – सेवा। सेवा का केवल यह मतलब नहीं कि जरूरतमन्दों की सहायता की जाए, बल्कि सेवा का यह प्रयोजन है कि हम अपने मानसिक अहंकार का धीरे-धीरे क्षय करें। जो व्यक्ति एक करोड़ की रकम देकर कहीं पर एक अस्पताल बना देता है और कहता है कि मैंने यह अस्पताल बनाया है, जिससे हजारों की सेवा हो रही है, उसको हम अच्छा काम जरूर मानते हैं, किन्तु सेवा नहीं मानते। अच्छा काम अवश्य करना चाहिए। अस्पताल बनाओ, स्कूल-कॉलेज या घर बनाओ, अच्छा काम करने में कोई हर्ज नहीं है, लेकिन इस अच्छे काम को सेवा शब्द के साथ मत जोड़ो, क्योंकि सेवा का यह अर्थ नहीं होता।

देखा जाए तो जो व्यक्ति अस्पताल के निर्माण हेतु एक करोड़ रुपये देता है, वहीं पर उसकी जिम्मेदारी खत्म हो जाती है। वह कभी हाथ में करनी या ईंट नहीं उठाता, सिमेन्ट जुड़ाई नहीं करता। फिर भी अकड़कर कहता है कि मैंने यह अस्पताल बनाया है। जिस अधिकार से वह दान-दाता कहता है कि मैंने यह अस्पताल बनाया, उतना ही मिस्त्री का भी कहने का अधिकार होता है, क्योंकि, जैसे ईंट, सिमेन्ट और छड़ से निर्माण का कार्य होता है, वैसे ही धन भी तो एक वस्तु ही है, जिसने उस निर्माण कार्य को सुलभ बनाया, और कुछ नहीं।

सेवा वही व्यक्ति कर सकता है जिसने अपने अहंकार को थोड़ा कम कर दिया हो। यह जानने के लिए कि तुम सेवा करने लायक हो या नहीं, एक छोटा-सा प्रयोग करके देखो। चाहे तुम बड़े आदमी हो या छोटे, अपने घर में झाड़ू खुद लगा दो। नौकरानी की प्रतीक्षा मत करो। अगर तुम अपने घर में रोज झाड़ू लगाने की क्षमता रखते हो, खाने के बाद खुद थाली-कटोरी साफ कर सकते हो, तब हम मानने को तैयार हैं कि तुम्हारे भीतर सेवा करने के कुछ गुण छुपे हैं। नहीं तो घर में काम करता है नौकर, और बाहर लोग छाती ठोककर बोलते हैं कि हम सेवा कर रहे हैं!

कहने का तात्पर्य यह कि जब अपने लोगों के बीच व्यक्ति कर्म करने से दूर भागता है, तब दूसरों के लिए कैसे कर पाएगा? जो अपनों के बीच काम नहीं करता, बल्कि बाहर छाती ठोंककर डींग मारता है, उस व्यक्ति के मुँह से उसकी सद्भावना नहीं, अहंकार बोल रहा है। इसलिए स्वाध्याय के बाद सेवा की शुरुआत होती है। सेवा का अर्थ होता है, अपने अहंकार के उठे हुए सिर को थोड़ा नीचे लाना। स्वाध्याय ही सेवा की ओर आने के लिए प्रेरित करता है। जब तक स्वाध्याय नहीं, सेवा नहीं। जब तक आत्म-सजगता नहीं, तब तक अहंकार का सिर नीचे आता नहीं। पर एक बार जब अहंकार का सिर नीचे आ जाता है और मनुष्य अपने मन

में खुद को बड़ा नहीं मानता, बल्कि एक सामान्य व्यक्ति मानता है, तब जो भी कार्य उसके द्वारा सम्पादित होता है, उसका परिणाम हमेशा अच्छा ही होता है। उस कर्म से हमेशा दूसरों का लाभ होता है। जिस कर्म से दूसरों का हमेशा लाभ होता है, वह कर्म सेवा कहलाता है।

सत्संग

आध्यात्मिक जीवन की तीसरी आधारशिला है – सत्संग। बहुत बार जब सेवा करते-करते मन में अहंकार उत्पन्न होने लगता है कि मैं कितना अच्छा काम कर रहा हूँ, तब सेवा के अहंकार के शमन हेतु सत्संग का सहारा लिया जाता है। सत्संग का मतलब होता है, मन के आडम्बरों से अपने आपको मुक्त करना। अगर हम अपने मन के ढोंग और आडम्बर के साथ रिश्ता जोड़ते हैं, तो असत् का संग हुआ। और अगर हम अपने मन की पवित्रता के साथ, जो शाश्वत, नित्य और सत्य है, रिश्ता जोड़ते हैं, तो उसको कहते हैं सत्संग।

अक्सर लोग कहते हैं कि सत्संग का मतलब होता है अच्छी बातों को सुनना। हाँ, कथा-प्रवचन सुनना भी सत्संग को प्राप्त करने का एक माध्यम है, लेकिन आपको प्रयास करना है अपने आंतरिक आडम्बर और ढोंग से स्वयं को मुक्त करने का। नहीं तो जिन्दगी भर आश्रमों में जाते रहो, वेद-उपनिषद् सुनते रहो, पर मन में कुछ बदलाव नहीं होगा। वह जैसे का तैसा रहेगा। गधे को खिलाया, न पुण्य न पाप। अगर आप गधे जैसे खाते रहना चाहते हो तो ठीक है, आते रहो, सत्संग सुनते रहो और बाहर जाकर जो जी में आये करते रहो। लेकिन अगर चाहते हो कि जीवन में उत्तमता और प्रवीणता आए, तो सत्संग द्वारा अपने मन के आडम्बरों को दूर करते हुए स्वयं को इनके बन्धनों से मुक्त करना होगा। यह आध्यात्मिक जीवन का तीसरा आयाम है।

समर्पण

व्यक्ति जैसे ही अपने आपको सत् में स्थापित करता है, उसके जीवन की एक अगली अवस्था प्रारम्भ होती है, जिसे समर्पण कहते हैं। उस समय मनुष्य अपने आपको उस परम सत्ता को समर्पित कर देता है, जिससे वह अपने जीवन को अच्छे ढंग से जीने के लिए ऊर्जा, शक्ति और प्रेरणा प्राप्त करता है। प्रेरणा का वह स्रोत है – ईश्वर। जैसे-जैसे हमारे भीतर समर्पण की स्थिति प्रबल होती है, वैसे-वैसे हम ईश्वर के प्रिय होते जाते हैं।

समर्पण को हम चौथा आधार कह रहे हैं, क्योंकि समर्पण प्राप्त होता है एक तैयारी के बाद। जो तैयारी आपने स्वाध्याय, सेवा और सत्संग द्वारा की, उसका परिणाम होता है समर्पण।

समर्पण के आधार हैं – श्रद्धा एवं विश्वास। श्रद्धा और विश्वास ऐसे तत्त्व हैं जिनके बिना एक त्यागी, तपस्वी या सिद्ध महात्मा भी अपने भीतर छुपे हुए ईश्वर के दर्शन नहीं कर सकता –

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धा: स्वान्त:स्थमीश्वरम् ॥

जब समर्पण की स्थिति आती है तब मन में यह भाव उत्पन्न होता है – *सकले तोमार इच्छा* – सब तुम्हारी इच्छा के अनुसार हो रहा है, मेरी अपनी कोई इच्छा नहीं है। इसका यही मतलब होता है कि मैंने अपनी कामना, वासना, संकीर्णता और स्वार्थ का त्याग कर दिया है। अपने आप को, जो बिजली की एक छोटी तार के समान था, काटकर बड़ी तार में जोड़ दिया है। इसको कहते हैं समर्पण।

समर्पण से मनुष्य भगवान का प्रिय बनता है। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा था – भगवान! आपको पूजने वाले तो बहुत हैं दुनिया में, कोई आपको साकार रूप में पूजता है, कोई निराकार रूप में। आपको चाहने वाले भी बहुत हैं दुनिया में, कोई आपको मित्र रूप में चाहता है, कोई प्रेमी रूप में, कोई संतान रूप में, तो कोई भगवान रूप में। और सभी दावा करते हैं कि मैं भगवान का प्रिय हूँ। इसलिए आप ही बता दो कि आपको किस प्रकार के व्यक्ति प्रिय हैं?

तब भगवान ने पहली बार अर्जुन को बताया कि मुझे किस प्रकार के व्यक्ति प्रिय हैं। इसका वर्णन गीता के बारहवें अध्याय में आता है, जहाँ वे बार-बार कहते हैं, *यो मद्भक्त: स मे प्रिय:।* अर्थात् ऐसा ही भक्त मुझे प्रिय है। लेकिन उस पर कोई ध्यान देता ही नहीं। हर व्यक्ति चाहता है कि मैं भगवान का प्रिय बनूँ, लेकिन भगवान की प्रियता के लिए जो योग्यता है, उसे आज तक किसी ने समझने की कोशिश नहीं की है।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्र: करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकार: समदु:खसुख: क्षमी ॥12.13॥
संतुष्ट: सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चय: ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्त: स मे प्रिय: ॥12.14॥

जो किसी से द्वेष न रखता हो, बल्कि सबके प्रति मित्रता और करुणा की भावना रखे, जो ममता और अहंकार से मुक्त हो, जो सुख और दु:ख में सम रहे, जो क्षमावान् हो, जो संतुष्ट रहे, जो सतत् प्रयत्न करने वाला योगी हो – इस प्रकार अपने प्रिय व्यक्ति के बहुत सारे लक्षण और गुण कृष्ण जी ने अर्जुन को बतलाए। ये जितनी योग्यताएँ उन्होंने बतलाई हैं, उनसे युक्त व्यक्ति ही अध्यात्म की इन तीन सीढ़ियों को पारकर अपने आपको चतुर्थ अवस्था, अर्थात् समर्पण में स्थापित कर पाता है।

साधना

पाँचवाँ और मुख्य बिन्दु है साधना। साधना को योग में इस प्रकार परिभाषित किया गया है – *स तु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्काराऽऽसेवितो दृढभूमि:।* जिस पुरुषार्थ को बार-बार करते हुए अन्तत: प्रवीणता को प्राप्त किया जाए, उसी को साधना कहते हैं। आध्यात्मिक जीवन के सन्दर्भ में साधना का मतलब हो जाता है बार-बार अपने आपको देखते रहना। जहाँ पर भी कोई कल-पुर्जा ढीला दिखाई दे, तुरन्त उसको कस देना। स्वाध्याय में भी जब हम देखते हैं कि कोई चीज समझ में नहीं आ रही है, कोई शंका हो रही है तब इसका मतलब हमारी सोच में एक कल-पुर्जा ढीला पड़ गया है। इसलिए स्वाध्याय, सेवा, सत्संग और समर्पण को भी साधना मानते हुए चलना है। हम एक चीज को सीख गए या प्राप्त कर लिया, केवल इतना पर्याप्त नहीं है। हर क्षण सजग रहते हुए आगे बढ़ते जाएँ, आगे बढ़ने के क्रम में जो त्रुटि या दोष दिखाई पड़ता है, उससे मुक्त होने का प्रयत्न करते रहें, इसी को साधना कहते हैं।

जब समर्पण की पूर्णता में ईश्वर प्रणिधान की स्थिति आती है, तब परमात्मा और जीवात्मा, दोनों एक हो जाते हैं। ईश्वर प्रणिधान की उस अवस्था में प्रवीणता लाने के लिए साधना आवश्यक है। यह हमारे जीवन की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे हम सहज रूप से प्राप्त कर सकते हैं, केवल यह निर्णय लेकर कि हमें अपने जीवन को सम्हालते हुए चलना है। सम्हालते हुए चलने का मतलब, भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों का समावेश हमारे जीवन में होना है। भौतिक स्तर पर भौतिक विद्याओं में पारंगत और आध्यात्मिक स्तर पर आध्यात्मिक विद्याओं एवं आंतरिक अनुशासन में भी पारंगत। भौतिक और आध्यात्मिक आयामों का योग ही आगे चलकर हमारे जीवन को पूर्ण बनाता है। यही आदि काल से भारतीय संस्कृति और सभ्यता का आधार रहा है।

– 11 फरवरी 2008, गंगा दर्शन

अक्षय तृतीया की महिमा

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

भारतभूमि की विविधतापूर्ण आध्यात्मिक विरासत हमें ज्ञान का भण्डार उपलब्ध कराती है। हम सौभाग्यशाली हैं कि भारतभूमि में हमारा जन्म हुआ। जिस प्रकार किसी वस्तु के अस्तित्व में आने के बहुत पहले ही उसकी रूपरेखा तैयार कर ली जाती है, चाहे वह घर हो, कार हो, टेलीविजन हो, कम्प्यूटर हो, या उपग्रह हो, उसी प्रकार आपके जीवन की भी रूपरेखा बनी हुई है, जो आपके पैदा होने के बहुत पहले ही तैयार कर ली गयी थी। आपने गौर किया हो या न किया हो, पर यह आध्यात्मिक विरासत, जो व्रत, संकल्प और त्यौहारों पर बहुत अधिक बल देती है, व्यक्ति को जीवन की निर्धारित रूपरेखा से दूर जाने से रोकती है।

यह किस प्रकार होता है? जरा नजदीक से देखें और विचार करें तो आप पायेंगे कि ये त्योहार विशेष समय पर आते हैं। ये बहुत पहले बीते हुए त्योहार की याद को भी ताजा करते हैं, जिससे पता चलता है कि समय की गति चक्राकार है, जिसके कारण ये विशेष क्षण बार-बार लौट कर आते हैं। इन विशेष क्षणों को मुहूर्त्त कहा जाता है और हर मुहूर्त्त के महत्त्व को जीवन के हर स्तर पर अनुभव किया जा सकता है, चाहे वह शारीरिक, बौद्धिक, भावनात्मक स्तर हो या आध्यात्मिक।

ऐसा ही एक महत्त्वपूर्ण मुहूर्त्त है 'अक्षय तृतीया' जो एक त्यौहार के रूप में जाना जाता है। यह तिथि वैशाख मास के शुक्ल पक्ष के तीसरे दिन पड़ती है। अक्षय का अर्थ है जिसका क्षय न होता हो, जो स्थिर और अपरिवर्तनीय हो। हमारे जीवन में

कुछ भी स्थिर नहीं है, सबकुछ लगातार बदलता रहता है और जब समय-समय पर अपने आपको उस परिवर्तन के अनुसार ढालना पड़ता है तो हमें वह परिवर्तन बोझ के समान लगता है।

जिसका कभी नाश न हो, ऐसी वस्तु का वास्तव में केवल एक उदाहरण हमारे सामने है। वह है 'सत्य', जो सर्वव्यापी ईश्वर का ही दूसरा नाम है। यद्यपि हमने ईश्वर के दर्शन कभी नहीं किए हैं, पर अपने पूर्वजों से हमें जो विरासत मिली है, उसके अनुसार किसी विशेष मुहूर्त्त में हम ईश्वर नामक उस शाश्वत सत्य का अनुभव कर सकते हैं और उससे लाभ उठा सकते हैं। इन शुभ मुहूर्त्तों में से एक है, अक्षय तृतीया।

वास्तव में अक्षय तृतीया को ईश्वर तिथि के नाम से भी जाना जाता है। ईश्वर तिथि कहने का तात्पर्य यह कि जो वस्तु इस दिन पैदा होगी, उसका कभी नाश नहीं होगा। परशुराम, जिनकी चिरंजीवियों में गणना की जाती है, उनका जन्म इसी दिन हुआ था। इस कारण इस दिन को चिरंजीवी तिथि के नाम से भी जाना जाता है।

चारों युगों में से एक त्रेता युग इसी दिन शुरू हुआ था, इसलिए इस दिवस का नाम युगादि तिथि भी है, जिसे एक बहुत महत्त्वपूर्ण समय माना जाता है, क्योंकि उस समय वातावरण में एक बहुत बड़ा बदलाव आता है। इसी दिन बद्रीनाथ के, जो हिमालय के चार पूज्य तीर्थधामों में से एक है, द्वार भगवान नारायण की पूजा-अर्चना के लिए खुलते हैं।

इस दिन की अविनाशी शक्ति के कारण, इस दिन जो भी शब्द हम बोलते हैं, जो भी विचार हमारे मन में आते हैं और जो भी कार्य हम करते हैं, वे हमारे संस्कार बन जाते हैं और जन्म-जन्मांतर तक हमारे साथ रहते हैं। अत: यह स्वाभाविक है कि इस दिन जप, तप, त्याग, दान और ईश्वर के स्मरण के द्वारा शुभ कार्य किए जायें, जिससे कि हमारा पुण्य-लाभ बढ़े।

इस दिन का प्रधान तत्त्व है अक्षय तत्त्व, वह अविनाशी तत्त्व जो इस दिन अपनी प्रतिभा को साकार बनाने के मार्ग हमारे लिए खोल देता है। वैसे भी यह ऐसा दिन है जब हमें अपने भीतर झाँकना चाहिए, क्योंकि इस दिन के स्पंदन इस कार्य को और सरल बना देंगे। यह एक ऐसा दिन है जिस दिन विध्वंसकारी गतिविधियों को छोड़कर, उत्तम कार्यों को क्रियान्वित करना चाहिए, जिससे पीछे मुड़कर देखने पर प्रसन्नता का अनुभव हो, क्योंकि इस तत्त्व की अविनाशी शक्ति, जो इस दिन प्रबल होती है, जीवन के हर आयाम में प्रवेश करती है।

अक्षय तृतीया के दिन जल्दी जागकर विष्णुसहस्रनाम के पाठ के साथ हवन करना चाहिए। इसके बाद यदि समय हो तो गुरु मंत्र का जप या अखंड नाम-संकीर्तन करना चाहिए। अक्षय तृतीया के दिन सम्पूर्ण भगवत् गीता का पाठ भी बहुत महत्त्व रखता है। और यदि भाग्य से आपको किसी जरूरतमंद की सहायता करने का अवसर मिले, तो सहायता अवश्य करें, इससे आपको ईश्वर का आशीर्वाद मिलेगा।

सेवा योग

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

सेवा का उद्देश्य क्या है? दीन-दरिद्र और पीड़ित मानवता की सेवा, समाज और देश की सेवा किसलिए करते हो? इसलिए कि सेवा के द्वारा तुम्हारा हृदय शुद्ध होता है। अहंभाव, घृणा, ईर्ष्या, उच्चता की भावना और इस प्रकार की सारी कुत्सित भावनाओं का नाश होता है तथा नम्रता, शुद्ध प्रेम, सहानुभूति, सहिष्णुता और दया जैसे गुणों का विकास होता है। सेवा से स्वार्थ-भावना मिटती है। द्वैत-भावना क्षीण होती है। जीवन के प्रति दृष्टिकोण विशाल और उदार बनता है। एकता का भान होने लगता है। परिणामस्वरूप आत्मा का ज्ञान प्राप्त होने लगता है। एक में सब और सबमें एक की अनुभूति होने लगती है। तभी असीम सुख प्राप्त होता है। आखिर समाज क्या है? अलग-अलग व्यक्तियों या ईकाइयों का समूह ही तो है। विश्व ईश्वर का ही व्यक्त रूप है। सेवा ही ईश्वर की पूजा है। लेकिन सेवा में भाव चाहिए, तभी हृदय-शुद्धि और त्वरित साक्षात्कार सम्भव है।

भेदभावना घातक होती है, अत: उसे मिटा देना चाहिए। उसे मिटाने के लिए ब्रह्म-भावना, चैतन्य की अद्वैतता का विकास और नि:स्वार्थ सेवा की आवश्यकता है। भेद-भावना अज्ञान या माया द्वारा रचित एक भ्रम-मात्र है।

नि:स्वार्थ सेवा के प्रति तीव्र उत्साह का विकास करना चाहिए। सबके प्रति दया-भाव रखो, सबसे प्रेम करो, सबकी सेवा करो, सबके प्रति उदार बनो, सहिष्णु रहो। सबमें ईश्वर की सेवा करो। यही लक्ष्य-प्राप्ति का मार्ग है। जिस प्रकार किसी माता के नौ बच्चे मर जाएँ, सिर्फ एक बचा रहे, तो वह माता उस एक बच्चे का बहुत ध्यान रखती है, उसी प्रकार, हमें भी प्राणी-मात्र के प्रति असीम प्रेम रखना होगा। साधक के लिए आवश्यक प्रथम और प्रमुख गुण यही है। जो इस असीम प्रेम से सम्पन्न होगा, उसका दिव्य शरीर अद्भुत तेज से चमकेगा और अवर्णनीय कान्ति से दीप्त होगा। जो मनुष्य सदा अपने सुख और सुविधाओं को भुलाकर दूसरों की सहायता करने का ही प्रयत्न करता है, वही वास्तव में आध्यात्मिक मार्ग का योग्य साधक है। आत्मानन्द के साम्राज्य का द्वार खोलने की कुंजी उसके हाथ लग जाती है।

कर्म के प्रति सही दृष्टिकोण

आजकल के नये साधक कोई सुगम कार्य करना पसन्द करते हैं, जैसे लिखना, पूजा के लिए फूल चुनना, पुस्तकालय में पुस्तक सजाना, टाइप करना, किसी काम का निरीक्षण या प्रबन्ध करना, आदि। पानी भरना, लकड़ी चीरना, रसोई के बर्तन साफ करना, कपड़े धोना, झाड़ना, खाना पकाना, शौचालय साफ करना और रोगियों

की सेवा करना जैसे काम उन्हें पसन्द नहीं आते। उन्हें ये काम नीच मालूम होते हैं। उन्होंने कर्मयोग और वेदान्त को सही मायने में समझने का प्रयत्न नहीं किया है। अभी वे बाबू ही हैं। उन्हें कठोर अनुशासन और प्रशिक्षण की आवश्यकता है। मैं ऐसे बाबू-साधकों को हमेशा एक वर्ष थाली-बर्तन माँजने में, और एक वर्ष तक रोगियों का कमरा झाड़ने-बुहारने एवं कपड़े धोने में लगाता हूँ। तभी वे वास्तविक साधक बनते हैं और तभी ध्यान प्रारम्भ करने की योग्यता उनमें आती है।

आश्रमों का प्रबन्ध यदि ढंग से नहीं किया गया तो वहाँ का रसोईघर लड़ाई-झगड़े का अखाड़ा बन जाता है। सारी माया रसोई घर में ही है। साधक वहाँ लड़ने लगते हैं। एक कहता है, 'मुझे आज घी या साग नहीं मिला।' दूसरा कहता है, 'दाल में पानी अधिक है।' तीसरा साधक कहता है, 'अमुक बहुत सारी चीनी खा गया, आज दूध के लिए चीनी बची ही नहीं।' यदि नये साधकों का शिक्षक सच्चा कर्मयोगी है तो आश्रमों के रसोई घर से ही अद्वैत वेदान्त का पाठ आरम्भ होता है और हिमालय पर्वत की वशिष्ठ-गुफा में समाप्त होता है। सहिष्णुता, धैर्य, क्षमा, दया, करुणा, प्रेम, सामंजस्य, सच्ची सेवा-भावना आदि गुणों को विकसित करने, चित्त को शुद्ध करने और जीव-मात्र की एकता का अनुभव करने के लिए रसोई घर एक उत्कृष्ट विद्यालय है। प्रत्येक साधक को अच्छी तरह रसोई बनाना सीखना चाहिए।

साधक यदि गुरु के साथ रहता है, तो जो भी काम दिया जाए, उसे रुचि के साथ करने को तैयार रहना चाहिए। जिस काम को देखकर मन भागता हो, उसके प्रति यदि रुचि पैदा की जाए, तो कोई भी काम करने की इच्छा सहज होने लगेगी और इस प्रकार साधक का मनोबल निश्चित ही विकसित होगा।

मन का सन्तुलन बनाए रखने से मनुष्य वास्तविक नित्य-सुख प्राप्त करता है। यह सुख बाजार से खरीदी जाने वाली वस्तु नहीं है। यह ऐसी वस्तु है, जो आत्म-भाव से, समदृष्टि के साथ संयत इन्द्रियों से, आत्म-निग्रह-पूर्वक की गयी नि:स्वार्थ और सतत् सेवा से तथा निरहंकारिता, विशालता, उदार सहिष्णुता, उच्च कोटि के धैर्य, करुणा, शान्ति, उद्वेग का नियन्त्रण आदि गुणों का विकास करने से और इसी प्रकार कामनाओं, चिन्ताओं, भय और उदासी को ध्यान और आध्यात्मिक साधना के द्वारा दूर करने से प्राप्त की जा सकती है। मन की शान्ति और सन्तुलन ही मनुष्य को शाश्वत सुख प्रदान कर सकते हैं। जिस महापुरुष ने यह शान्ति और समाधान प्राप्त कर लिया है, वह जिस सुख का अनुभव करता है, उसके सामने तीनों लोकों का वैभव भी अति तुच्छ सिद्ध होगा। ईमानदारी से सोचें कि आखिर आनन्द कहाँ है? कौन बड़ा आदमी है? क्या यह आनन्द उस वैभव-सम्पन्न राजा के पास है, जिसका मन राजमहल में रहकर भी चंचल और असन्तुलित है, या उस गरीब साधु के पास है, जिसका मन शान्त, तेजोमय और सन्तुलित है तथा जो गंगा माता के पवित्र तट पर एक घास की झोपड़ी में वास कर रहा है?

हम यदि किसी की सेवा करना चाहते हैं, तो हर तरह से उसे प्रसन्न करना होगा। ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए जिससे वह अप्रसन्न हो। ऐसा ही काम करना होगा जिससे उस व्यक्ति को अतीव सुख मिले। सच्ची सेवा इसी प्रकार होती है। लेकिन सामान्यतया लोग सेवा का ढोंग रचते हुए खुद को ही सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। यह बड़ी भूल है। किसी को तेज धार वाला छुरा देना हो, तो जो व्यक्ति तेज धार अपने हाथों में लेकर मूठ दूसरे को पकड़ाता है, वही सच्चा सेवक है। सच्चा सेवक दु:ख भोगने से सुख पाता है। वह अपने कन्धों पर ऐसे काम का भार ले लेता है, जो बहुत उत्तरदायित्वपूर्ण है, कठिन है और जिसमें बहुतों की अरुचि रहती है। दूसरों को प्रसन्न रखने के लिए वह स्वयं अपने को मिटा देता है। दूसरों की सेवा करने और उन्हें खुश करने के लिए स्वेच्छा से दु:ख और कष्ट भोगने लगता है।

करुणा और प्रेम

दो-दो घण्टे तक कुम्भक क्रिया द्वारा श्वास रोक लेना, चौबीसों घण्टे प्रार्थना रटते रहना, खाना-पीना छोड़कर तहखाने के अन्दर चालीस दिन तक समाधि लगाना, खेचरी मुद्रा का अभ्यास करते हुए जीभ काट लेना, ग्रीष्म ऋतु की चिलकती धूप में एक पैर पर खड़े रहना, ठीक मध्याह्न के समय सूर्य पर त्राटक करना, किसी निर्जन और नीरव वन में ॐ ॐ ॐ का जप करना, संकीर्तन करते समय अश्रुधारा बहाना – ये सब तब तक निरर्थक हैं जब तक कि इनके साथ व्यक्ति में प्रत्येक प्राणी के अन्दर स्थित ईश्वर के प्रति ज्वलन्त प्रेम न उमड़े और प्राणीमात्र में ईश्वर की सेवा करने की भावना जागृत न हो। खेद का विषय है कि आजकल के साधकों में ये

दो अपरिहार्य गुण बिलकुल नहीं होते और यही कारण है कि वे एकान्तवास करते हुए भी ध्यान-मार्ग में विशेष प्रगति नहीं कर पाते हैं। प्रारम्भ में प्रेम और सेवा के निरन्तर अभ्यास के द्वारा उन्होंने अपने अन्त:करण को तैयार नहीं किया है।

मैंने ऐसे अनेक भक्त देखे हैं, जो अपने गले और कलाइयों में कई जप-मालाएँ पहने रहते हैं और दिन-रात 'हरे राम हरे कृष्ण' का जप करते रहते हैं। ये भक्त कभी किसी रोगी के पास नहीं जाते हैं। वह मर रहा हो, तो उसे कुछ दूध या पानी भी नहीं देते हैं और पूछते भी नहीं कि 'क्यों भाई, क्या चाहिए? मैं कुछ सेवा करूँ?' रास्ते में कोई दिख जाए तो कौतूहलवश दूर खड़े देखते रहते हैं। क्या इन्हें सच्चा वैष्णव या भक्त कहा जा सकता है? क्या इनके भजन और ध्यान से रंच-मात्र भी वास्तविक लाभ होने वाला है? एक जीवित नारायण सामने मरने की हालत में है, उसका जीवन डाँवाडोल है, तब भी इन भक्तों के हृदय में उनकी सेवा करने या उनसे दो मीठी बातें करने तक की इच्छा नहीं होती। ऐसे कठोर-चित्त होकर उस करुणासागर हरि के दर्शन की अपेक्षा ये कैसे कर सकते हैं? ये उस ईश्वर का साक्षात्कार करने की आशा कैसे कर सकते हैं, जबकि प्रत्येक प्राणी में उनका दर्शन करने योग्य उनकी आँखें ही नहीं हैं और सभी रूपों में उस ईश्वर की सेवा कर सकने की भावना ही नहीं है?

ईश्वर समर्पित कर्म

जिस व्यक्ति में ज्ञान और भक्ति है, वही वास्तव में देश और जनता की पूरी सेवा कर सकता है। ज्ञान और भक्ति ही कर्मयोग की आधारशिला होनी चाहिए। प्रारम्भ में कर्मयोग के साथ ज्ञान या भक्ति-योग को मिलाने से बहुत लाभ होता है। ज्ञान-कर्मयोगी अनुभव करता है कि वह अपनी आत्मा की ही सेवा कर रहा है और उसे अद्वैतानुभूति होती है। भक्ति-कर्मयोगी अनुभव करता है कि वह सबमें इष्टदेव की ही पूजा कर रहा है और उसे ईश्वरानुभूति होती है तथा अपने प्रियतम के दर्शन हो जाते हैं। बिना ज्ञान और भक्ति के केवल दयावश कुछ भीख आदि देना साधारण सामाजिक कार्यों से अधिक कुछ नहीं है। वह न तो योग है, न पूजा। वह साधारण स्तर का कर्म है जिससे मनुष्य की बहुत उन्नति नहीं हो सकती। उसे यदि प्रगति कहते भी हो तो वह अत्यन्त धीमी और मूढ़ प्रगति है। याद रखो, भाव ही कल्याणकारक होता है।

जो कर्मयोगी प्रारम्भ में सारे काम ईश्वर की पूजा के रूप में करता है, अपना शरीर, मन और सभी क्रियाएँ उस ईश्वर के चरण-कमलों में फूल की तरह समर्पित करता है, वह सतत् चिन्तन के द्वारा ईश्वरमय हो जाता है और पूर्ण समर्पण के द्वारा ईश्वर में लीन हो जाता है। वह ईश्वर से एकरूप हो जाता है। उसकी इच्छाएँ ब्रह्माण्डीय इच्छाओं से मिल जाती हैं। यह उसकी अन्तिम और समुन्नत स्थिति है। वह इस बात का अनुभव करेगा कि संसार में जो-कुछ हो रहा है, सब ईश्वर की लीला के सिवाय कुछ नहीं है। ब्रह्मसूत्र के *लोकवत् तु लीलाकैवल्यम्* वाक्य की सत्यता

का वह अनुभव करता है। उसे ऐसा भान होगा कि वह ईश्वर के साथ एक हो गया है और उसकी लीला में वह भी सहभागी है। वह ईश्वर के लिए ही जीता है। अब उसके विचार और काम ईश्वर के ही विचार और काम हो जाते हैं। पर्दा उठ जाता है। भेदभाव पूर्णतया मिट जाता है। अब वह दिव्य ऐश्वर्य का सुख भोगने लगता है।

अस्पताल में काम करने वाले डॉक्टर को यह भावना रखनी चाहिए कि रोगियों के रूप में ईश्वर ही प्रकट हुआ है। उसे सोचना चाहिए कि 'मैं जो कुछ कर रहा हूँ, ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए कर रहा हूँ, ऊपर के अधिकारियों को खुश करने के लिए नहीं।' उसे समझना चाहिए कि ईश्वर अन्तर्यामी है। वही पीछे से सभी का संचालन करता है और इस शरीर का सूत्रधार वही है। उसे सोचना चाहिए कि वह अपना सारा काम ईश्वर की इच्छा से ही कर रहा है, जिसकी विराट् योजना है। उसे अपने सारे अच्छे-बुरे काम ईश्वर के चरणों में समर्पित करने चाहिए और कहना चाहिए, *ॐ तत्सत् ब्रह्मार्पणमस्तु*। यही वह ज्ञानाग्नि है, भक्ति की अग्नि है, जो सारे कर्मों का फल समाप्त करती, चित्त-शुद्धि लाती, आत्मज्ञान दिलाती और परम गति प्राप्त कराती है। इस प्रकार का अभ्यास सतत् करते रहने पर क्रमशः अपने काम के प्रति मन अनासक्त होता जाएगा। महिलाओं को घर का काम करते समय प्रतिदिन इसी प्रकार की भावना का अभ्यास करना चाहिये। इस ढंग से सारे कर्म आध्यात्मिक बनते हैं। सारे कर्म ईश्वर की उपासना बन जाते हैं। इस मनोवृत्ति से काम करते रहने पर मनुष्य अपने जीवन में चाहे जिस परिस्थिति में भी हो, ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव कर सकता है।

सेवा का मूल्य

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

ध्यान लगाना सरल है। रामायण, गीता या भागवत पढ़ना सरल है। योग सिखाना भी सरल है। पर इस कृतघ्न मानव की सेवा करना संसार में मोक्ष की तरह कठिन है। जो साधना सबसे बड़ी है, जो सर्वाधिक संतोष देती है और बिना किसी झंझट के ईश्वर का दर्शन कराती है वह है परमार्थ। लेकिन वह साधना हो नहीं पाती।

हमारे गुरु, स्वामी शिवानन्द जी की सहज वृत्ति थी परमार्थ की। हम आश्रम में कोढ़ियों, मेहतरों और बीमारों की सेवा करते थे, आश्रम में कोई भी आता था तो उनको कमरा देकर अच्छे से रखते थे, पर हमें कुछ समझ में नहीं आता था कि ऐसा क्यों करते हैं, भले ही हम शुरू से उनके साथ रहे। गुरुजी कहते थे, हम इसीलिए चेले बनाते हैं। ऋषिकेश में कोढ़ी सड़क के किनारे बैठकर भिक्षा माँगते थे। तब स्वामीजी ने उन डेढ़-दो सौ परिवारों के लिए कॉलोनी बनवाई। उन लोगों के लिए झोपड़ी बनाने की ड्यूटी हमको दी गई। हमको बचपन से ही भवन-निर्माण का शौक रहा है, लगता है विश्वकर्मा के संस्कार लेकर पैदा हुए हैं।

उन दिनों गाँधीजी की सहयोगी, मीराबेन भी वहाँ रहती थीं, पशुलोक में। उनसे खर ले लिया और खर से दिवार बना दी, छत और दरवाजे भी बना लिए। उसके बाद हमको ड्यूटी दी गई – रोज रामायण सिखाओ। रोज सबेरे-शाम वहाँ जाते थे, रामायण सिखाते थे। डर भी लगता था कहीं कोढ़ न हो जाए! अगर स्वामीजी ने नहीं कहा होता, तो हम कभी नहीं जाते।

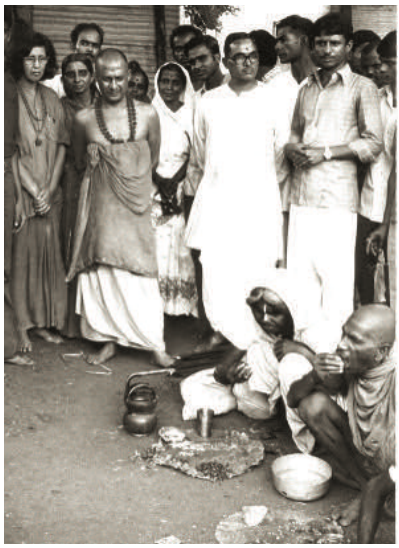

इसी बीच में मेरी ड्यूटी लाहौर लग गई और मैं पुस्तकों के सम्पादन, छपाई वगैरह के काम के लिए लाहौर चला गया। लेकिन कभी जीवन में यह समझ में नहीं आया कि सेवा का क्या मूल्य है। ध्यान का मूल्य समझ में आता था, कुण्डलिनी योग, तंत्र आदि का मूल्य समझ में आता था, बस एक सेवा का मूल्य समझ में नहीं आता था कि आखिर कोढ़ी को खाना खिलाने से क्या होता है, बीमार को दवा देने से क्या होता है। मरने दो अभागे को, अपनी तकदीर लेकर आया है। वैसे भी करोड़ों मर रहे हैं अफ्रीका में, हिन्दुस्तान में, हमारे आगे-पीछे, तो इसे भी मरने दो – हम तो यही सोचते थे।

गुरुजी का आश्रम छूटा, मुंगेर आए तो योग सिखाना शुरू कर दिया। वहाँ पर बीच-बीच में गोयनका जी कभी कोढ़ियों को खाना खिला देते थे, कभी कम्बल दे देते थे। वे संस्था के सेक्रेटरी थे, संस्था से पैसा लेकर करते थे। मैं हाँ बोल देता था, दस्तखत भी कर देता था, मगर मेरे को कोई दिलचस्पी नहीं थी।

सन् 1989 में मेरे अन्दर बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। मेरे को स्पष्ट आवाज आई। उसके बाद मेरे जीवन का लक्ष्य योग नहीं, मोक्ष नहीं, भक्ति नहीं, अनुभव नहीं और ईश्वर का दर्शन भी नहीं, बल्कि यह हो गया कि जो कुछ मेरे पास है वह दूसरों के लिए है। ऐसे लोगों के लिए नहीं जिनके पास टी.वी., मोटरसाईकिल और मजा उड़ाने के लिए सब कुछ है, बल्कि मेरा सब कुछ उनके लिए है जिनके पास कुछ भी नहीं है। और मैं सबका हिसाब-किताब रखता हूँ। रात-दिन यही सोचता हूँ, 'भगवान! तुमने कह तो दिया है, लेकिन मैं क्या करूँ, मेरे को रास्ता बताओ।' मैंने स्वामी निरंजन को कह दिया कि योग सिखाओ और जो पैसा मिलता है गरीबों में लगाओ।

यह कार्य बहुत कठिन है। *सेवाधर्म: परमगहनो योगिनामपि अगम्य:* – सेवा धर्म अत्यन्त गहन है, योगियों की भी वहाँ पर पहुँच नहीं है। भगवान की कृपा से हमको रास्ता मिल गया है, अपने को अब और किसी चीज की जरूरत नहीं है। जब तक जीवित हैं तब तक यही करेंगे और अगर दूसरा जन्म मिलेगा तो भी यही करेंगे – कृतघ्न मानव की सेवा।

– 25 जुलाई 1999, रिखियापीठ

योग का अमर संदेश

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक जीवन का अनुभव करने के लिए मनीषियों ने तीन सीढ़ियों की चर्चा की है – सद्विचार, सत्कर्म और सदाचरण। ये धर्म के तीन पक्ष भी हैं। इन तीनों के बिना धर्म, धर्म नहीं होता है। जब तक मनुष्य इन तीनों की शिक्षा ग्रहण नहीं करता, वह धार्मिक नहीं कहलाता है, चाहे कितनी ही घण्टी क्यों न बजाए, चाहे कितनी ही अगरबत्ती क्यों न दिखाए। वह तो मात्र एक यंत्रवत् प्रक्रिया हो गयी। उससे न श्रद्धा का विकास हुआ, न भक्ति का, न प्रतिभा का। आध्यात्मिक जीवन में चढ़ने के लिए इन तीन सीढ़ियों का सहारा लेना पड़ता है। जब हम इस सीढ़ी पर चढ़ते हैं, तब हमारा भौतिक, मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन समृद्ध हो जाता है। लेकिन सबसे कठिन है, धरती को छोड़ना और अपने पैरों को प्रथम सीढ़ी पर रखना। चाहते हुए भी नहीं हो पाता।

मनुष्य जीवन में इच्छाएँ तो अनेक होती हैं, और उनको पूरा करने के लिए मन तरसता भी है। अपने जीवन की क्रियाओं में हम समय भी निकालते हैं, ताकि हम चिन्तन कर सकें, योजना बना सकें कि किस प्रकार हम इस नई इच्छा को पूरा कर सकते हैं, किस प्रकार का प्रयास कर सकते हैं, और कभी-कभी उस प्रयास को भी पूरा करते हैं। फिर भी धरती से ऊपर उठना मुश्किल है, क्योंकि धरती का जो आकर्षण है, वह है कामनाओं में सुख का आकर्षण, वासनाओं में सुख का आकर्षण। और इस आकर्षण से स्वयं को मुक्त करना कठिन है। आकर्षण का मतलब होता है, जो शक्ति हमेशा उस ओर खींचती है। और जीवन में सबसे जबरदस्त आकर्षण है सुख का। शास्त्रों में कहा गया है कि इस भोगमय जीवन को तुम ईश्वर की देन मानो और भोग भोगते जाओ, पर उससे आसक्त मत होओ। यह जानो कि यह ईश्वर की एक देन है। तुम्हारी अपनी उपज नहीं है।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ॥

अतः जब हम कहते हैं कि अपने मूल स्वभाव तक पहुँचना है, तो पहले यह जान लो कि भोग में तुम्हारी कितनी लिप्तता है। उसको संयत करो। वह संयम ही योग है। योग, जिसको हम एक अनुशासन, एक विद्या, एक दर्शन, एक साधना, एक विज्ञान मानते हैं, यह शारीरिक और मानसिक संरचनाओं को स्वस्थ बनाते हुए व्यक्तित्व की चेतना को जागृत करता है। और चेतना की जागृति से व्यक्ति प्रतिभा से पूर्ण होता है।

जागृत मस्तिष्क

बहुत समय पहले एक बार हमारे गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी ने अपना एक अनुभव सुनाया था। जब वे ऋषिकेश में अपने गुरु आश्रम में रहते थे, तब एक रात उन्होंने एक स्वप्न देखा कि एक आलीशान नगर है, पर उस नगर में लोग नहीं हैं। श्री स्वामीजी उस नगर में घूमते हैं, घरों में जाते हैं, लेकिन किसी को नहीं देखते हैं। इस नगर भ्रमण के दौरान अंधेरा होने लगता है और पूर्ण अंधकार हो जाता है। जब रात हो जाती है, तो श्री स्वामीजी मकानों में बत्ती का स्विच खोजते हैं। बत्ती का स्विच है, बल्ब है, सब कुछ है, लेकिन ऑन करने से मालूम पड़ता है कि वहाँ पर ट्रान्समिशन ही नहीं है। ऐसा उनको अनुभव हुआ और इस अनुभव को लेकर वे पहुँचते हैं अपने गुरु स्वामी शिवानन्द जी के पास। स्वामी शिवानन्द जी उनको कहते हैं कि तुमने जो देखा है, वह अपने मस्तिष्क को ही देखा है, क्योंकि यह मस्तिष्क भी एक नगर की भाँति है। अनेक मकान हैं, अट्टालिकाएँ हैं, केन्द्र हैं, लेकिन वहाँ पर कोई रहता नहीं है। केवल एक ही हिस्से में, दसवें भाग में लोग रहते हैं। बाकी नौ भागों में कोई नहीं रहता है और वे सब केन्द्र बन्द हैं, वहाँ पर ऊर्जा का, प्राण शक्ति का प्रवाह नहीं होता। वे जागृत नहीं हैं। ट्रान्समिशन ही नहीं हो रहा है।

विज्ञान भी यही बात कहता है कि मस्तिष्क का नब्बे प्रतिशत भाग अभी सोया पड़ा है, जागृत नहीं है। इसको जागृत करने का तरीका है योग। और इसकी जागृति

से जो प्रकाश आता है, उसको कहते हैं, प्रतिभा का विकास। हर मनुष्य के जीवन में प्रसुप्त क्षमताएँ हैं, लेकिन अभी इन क्षमताओं के बारे में किसी को मालूम नहीं है। जितना मालूम है, वह केवल दस प्रतिशत गतिशील मस्तिष्क के कारण आज हमें मालूम है। अपने जीवन में, समाज में, संसार में, विज्ञान में, विद्या में हमने जो उपलब्धि प्राप्त की, वह सब हमारे इस दस प्रतिशत जागृत मस्तिष्क का खेल है। तो सोच लो, अगर पूरा मस्तिष्क जागृत हो जाय, जीवन में कितनी सम्भावनाएँ, कितने द्वार खुल जायेंगे! इसलिए इसी को जागृत करना है।

जब मस्तिष्क सौ प्रतिशत जागृत हो जाय, तो उस अवस्था को कहते हैं आत्मदर्शन – *तदा द्रष्टु: स्वरूपेऽवस्थानम्* – आत्मज्ञान की स्थिति, आत्म-दर्शन की स्थिति। यह बहुत व्यावहारिक अनुभव है, कोई दार्शनिक विचारधारा नहीं। यह जीवन के क्रम विकास का सिद्धान्त है। स्वामी शिवानन्द जी ने इस विद्या को आधुनिक युग के मानव के लिए आवश्यक माना और समझा। इसके पूर्व योग के संदर्भ में जो भी ज्ञात था, ग्रंथों में छिपा था या साधकों को मालूम था, किन्तु इसका प्रचार नहीं होता था, क्योंकि समाज में इसके दुरुपयोग की सम्भावना थी। अपनी प्रतिभाओं और सिद्धियों का उपयोग कर अपने अभिमान और घमंड को ही बढ़ाया जा सकता है, और वे मनुष्य के पतन का कारण बनते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं, ऐसा योग शास्त्रों में स्पष्ट रूप से लिखा गया है।

पातंजल और शिवानन्द योग

स्वामी शिवानन्द जी ने इस बात पर जोर दिया कि स्वयं को जागृत करने का एक व्यावहारिक और वैज्ञानिक तरीका खोजो। जो व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक तरीका मिला, वह योग के कुछ अंगों में दिखलाई दिया, और योग के अंग फिर दो भागों में बँट गए – एक पातंजल योग हो गया, दूसरा शिवानन्द योग हो गया। शिवानन्द योग पातंजल योग का पूरक है। स्वामी शिवानन्द जी कहते थे कि तुम योगासनों, प्राणायामों, बंधों और क्रियाओं का अभ्यास अवश्य करो, किन्तु जब तक तुम इन योगांगों को सिद्ध करने के लिए अभ्यास कर रहे हो, तब तक तुम अपने स्वार्थ से प्रेरित हो। लेकिन मनुष्य का जीवन केवल स्वार्थ तक सीमित नहीं रहता, उसके जीवन में परमार्थ का भी स्थान रहता है और तब स्वार्थ को पार कर जाने की क्षमता भी मनुष्य में सहज रूप से रहती है।

पातंजल योग में विविध योगांगों का उल्लेख आता है – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनकी शिक्षा स्वामी सत्यानन्द जी ने मुंगेर में दी। स्वामी सत्यानन्द जी के जीवन में हम योग के दो पक्षों को देख रहे हैं। एक पारम्परिक पक्ष, जिसकी शिक्षा उन्होंने बिहार योग विद्यालय, मुंगेर के माध्यम से दी है, और इसी पारम्परिक योग की शिक्षा बिहार योग विद्यालय ने बिहार

योग भारती के माध्यम से शैक्षणिक जगत् तक, वैज्ञानिक जगत् तक पहुँचायी। इसी पारम्परिक योग शिक्षा के अन्तर्गत देश में अनेक योग केन्द्रों की स्थापना हुई। अलग-अलग प्रतिष्ठानों ने अपने कर्मचारियों, अधिकारियों और समाज के लिए योग केन्द्रों की स्थापना की है, जिनका संचालन आज हो रहा है। कहने का तात्पर्य यह कि शरीर, मन, बुद्धि तथा आत्मा के विकास एवं स्वास्थ्य के लिए जो योग है, वह तो पारम्परिक योग शिक्षा के रूप में इन स्थानों में दिया गया और समाज में वही शिक्षा प्रचलित भी है। लेकिन हम लोगों के मन में हमेशा एक विचार आता था कि अगर हम मोक्ष भी प्राप्त करते हैं, समाधि भी प्राप्त करते हैं, तो उससे हमारी एक स्वार्थपूर्ण इच्छा की पूर्ति होती है, और कुछ नहीं। उस अवस्था में अगर हम भगवान के पास जाते हैं, भगवान हमसे एक ही चीज पूछेंगे, 'बेटा, तुमने जीवन में किया क्या?' हम हाथ जोड़कर कहेंगे, 'महाराज, आपको ही पाने के लिए हमने पूरा प्रयास किया है।' भगवान कहेंगे, 'बेटा, तुम्हारे मन में बहुत बड़ा स्वार्थ है कि तुमने जिन्दगी के इतने सारे वर्ष केवल मुझे पाने में बिता दिए, जबकि बहुत सहज रूप से तुम मुझे पा सकते हो।'

स्वार्थ और परमार्थ

एक दृष्टान्त याद आता है। महात्मा बुद्ध को एक बार नदी पार करनी थी, पर उन्हें कहीं नाव नहीं मिली। एक आदमी मिला, उसने पूछा, 'महात्मा जी, क्या ढूँढ रहे हैं, क्या चाहिए?' महात्मा बुद्ध बोले, 'मुझे एक नाव की खोज है, नदी पार जाना है।' आदमी हँस पड़ा। उसने कहा, 'अपने को ज्ञानी महात्मा कहते हो, क्यों नहीं नदी पर चलकर इसे पार कर लेते? मैं तो बहुत आराम से कर लेता हूँ।' महात्मा बुद्ध बोले, 'अच्छा! करके बताओ।' तो वह आदमी नदी के एक किनारे से दूसरे किनारे तक पानी पर चलकर फिर वापस आ गया। कुछ अभिमान के साथ कहा, 'देखा, कितना सरल है!' महात्मा बुद्ध बोले, 'अच्छा, मुझे यह बतलाओ कि इस सिद्धि को प्राप्त करने के लिए तुमने कितना समय लिया?' आदमी ने कहा, 'पिछले पैंतालिस वर्षों से मैंने दिन-रात यही साधना की है।' महात्मा बुद्ध बोले, 'जो काम एक चवन्नी से कर सकते हो, उस काम को करने के लिए तुमने पैंतालिस वर्ष गँवा दिये!'

इसी तरह जब आप भगवान के पास जायेंगे तो वे कहेंगे कि 'मुझसे मिलने का तो बहुत सरल तरीका है, लेकिन तुमने वह सोचा ही नहीं। तुम अपने साथ ही कुश्ती करते रहे, अपने ही पैंतरे बदलते रहे। खुद ही मार खाए हो, खुद ही आगे बढ़े हो, अपनी ही समस्याओं से परेशान रहे हो और तुमने अपनी ही मुक्ति चाही है। मेरी गोद में तुम्हारे जैसे स्वार्थियों का कोई स्थान नहीं है।' तब फिर अगर आप पूछिएगा कि किसके लिए वह स्थान है, तो कहेंगे, 'वह स्थान ऐसे लोगों के लिए सुरक्षित है, जो अपने लिए न सोचकर हमेशा दूसरों के लिए सोचते हैं।'

आप पूछेंगे कि 'भगवान, अब क्या करें, गलती हो गई। मान गए कि हम दोषी हैं, पर करें क्या?' वे कहेंगे, 'फिर से वापसी टिकट कटाओ और अगले जन्म में कुछ ऐसा काम करो, जिससे तुम्हारे स्वार्थ का शमन होता है। तुमको अपनी स्वार्थ वृत्ति से ऊपर उठना पड़ेगा।' जब हम रिटर्न टिकट लेकर वापस आते हैं, फिर वही हाल होने वाला है हमारा। हम सोचेंगे, 'ठीक है, अनुमति तो मिल गयी, अब हम जमकर परमार्थ करेंगे।' किन्तु एक दिन फिर थप्पड़ खायेंगे, क्योंकि जब हम प्रकृति में आते हैं, तो फिर उन्हीं गुणों और भावों से युक्त होकर आते हैं, जो प्रकृति के मूल स्वरूप हैं। अन्तर केवल इतना है कि हमारी चेतना थोड़ी और विकसित हो गई रहती है। मतलब एक जन्म में यह चीज नहीं मिली है। यह कर्म रूप में, संस्कार रूप में तुम्हारे साथ हमेशा रही है। और वह मात्र चेतना की परिपक्वता की एक स्थिति है। अब जैसे एक लड़का स्कूल जाता है, चौथी क्लास में पढ़ता है, फिर उसके परिवार का स्थानान्तरण किसी दूसरे नगर में हो जाता है, स्कूल छोड़ देता है, महीनों बीतते हैं, जब जीवन फिर स्थिर हो जाता है, वह फिर से स्कूल जाने लगता है, तो किस क्लास में जाता है? फिर से उसी क्लास में जाता है, जहाँ उसने शिक्षा अधूरी छोड़ी थी। अगर वर्षों बीत जाएँ, तो भी उसको उसी क्लास में जाना पड़ेगा, जहाँ पर उसने शिक्षा अधूरी छोड़ी थी। इसको कहते हैं संस्कार। हम संस्कार को लेकर आते जरूर हैं, लेकिन इस संसार में फिर उन्हीं बन्धनों का सामना करना पड़ता है, जो इस प्रकृति के मूल अंग हैं, केवल इतना अन्तर होता है कि संस्कार के बल पर कुछ लोग जीवन यात्रा को कुछ जल्दी पूरा कर लेते हैं, चारों आश्रमों में समय बिताने की आवश्यकता नहीं होती।

अब जैसे शंकराचार्य ने आठ साल की उम्र में घर छोड़कर संन्यास ले लिया। आपका बेटा होता तो आप कहते कि तुम गलत कर रहे हो, तुमको पहले ब्रह्मचर्य पच्चीस साल जीना है, फिर गृहस्थ आश्रम पच्चीस साल जीना है, उसके बाद तुमको संन्यास लेना है, ले लेना। बेटा कहेगा कि मेरी इच्छा तो अभी हो रही है, तो आप कहेंगे कि मेरे को बतलाओ शास्त्र में कहाँ लिखा है कि तुम युवावस्था में संन्यास ले सकते हो। शास्त्र में तो कहा गया है कि वानप्रस्थ आश्रम के बाद ही संन्यास लेना है, और वानप्रस्थ आश्रम की समाप्ति होती है पचहत्तर की उम्र में। उसके बाद तुम संन्यास लेने चले जाना। यह तो हम लोगों के जीवन का सामान्य क्रम है।

तू कहता कागज की लेखी, मैं कहता आँखों की देखी।

कुछ लोग इस सामान्य क्रम को जल्दी पूरा कर देते हैं। जैसे, शंकराचार्य, रमण महर्षि, स्वामी शिवानन्द और स्वामी सत्यानन्द ने किया। जो जीवन के कर्म-बन्धनों को नष्ट कर सकता है, वह है शिवानन्द जी का योग। जब भगवान कहते हैं वापस जाओ, उस समय तक पूर्व जन्म की कक्षा में मैंने समाधि को प्राप्त कर लिया था। इस

जन्म में क्या करना है? हम एक उच्च, सजग और जाग्रत चेतना को लेकर आते हैं, और जब इस धरती पर आते हैं तो हमारे जीवन के संस्कार प्रबल रहते हैं, हमें कोई रोक नहीं सकता, वह हमारा प्रारब्ध बनता है। आज हमारे गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी कहते हैं, जिन्दगी के जिस मोड़ पर मैं हूँ, उस मोड़ पर अगर मैं विचार करूँ, तो मुझे एक ही चीज स्पष्ट रूप से दिखलाई देती है कि मनुष्य को उसके जीवन काल में जो कुछ प्राप्त होता है, वह इसलिए होता है कि उसे मिलना था और जो नहीं मिलना रहता, चाहे तुम कितना ही हाथ-पैर क्यों न मारो, वह नहीं मिलने वाला है। यह बात श्री स्वामीजी आज भी हम लोगों को कहते रहते हैं कि तुम अपना पुरुषार्थ करते जाओ, क्योंकि तुम्हारे कर्मों का प्रयोजन तुम नहीं हो, बल्कि दूसरे लोग हैं। तुम अपना कर्म करते जाओ और अन्त में तुम्हें वही मिलेगा जो तुम्हारे लिए लिखा था, और जो नहीं मिलना है, वह मृगमरीचिका है। जैसे रेगिस्तान में मृगमरीचिका के रूप में सूखी धरती में जल दिखलाई देता है, और हम उस ओर दौड़ते हैं, जाने पर पता चलता है कि वहाँ कुछ नहीं है। लेकिन सामने देखते हैं तो वहाँ फिर पानी दिखलाई देता है, उस ओर दौड़ते हैं, वहाँ पता चलता है कि सूखा है, कुछ नहीं है। इसी प्रकार संसार की दौड़ तो मृगमरीचिका की दौड़ है, मृगमरीचिका के पीछे हम भागते हैं और जब तक भागते हैं तब तक मन में प्रसन्नता रहती है कि वहाँ पर सामने मुझे जल मिलने वाला है। लेकिन जब वहाँ पहुँचते हैं, तो देखते हैं कि जिसको हमने जल समझा था वह तो मात्र सूखा मरुस्थल है, तो भी जब दूर कहीं फिर जल दिखलाई देता है, हम उस ओर भागते हैं, मन में यह शंका भी रहती है कि कहीं वह मृगमरीचिका न हो, और साथ ही मन में कहीं यह विश्वास भी रहता है कि संभवत: वहाँ पानी भी हो, दोनों में अन्तर नहीं कर पाते।

शिवानन्द योग के सोपान

जब स्वामी सत्यानन्द जी मुंगेर में योग विद्या का प्रचार करके, उसको छोड़ते हैं और रिखिया जाते हैं, तब वहाँ पर वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि योग से मेरा नाता खत्म होता है और अब जीवन का जो अध्याय शुरू होने वाला है, वह पातंजल योग का नहीं है, बल्कि शिवानन्द योग का है। शिवानन्द योग भी अष्टांग योग है। इसका पहला अंग है सेवा। सेवा तो आखिर कर्म ही है, लेकिन सामान्य रूप से कर्म स्वार्थ प्रेरित होता है, सेवा में स्वार्थ प्रेरित नहीं, करुणा प्रेरित कर्म होता है। जब उस करुणा प्रेरित कर्म में स्वार्थ आ जाए, तब वहाँ मनुष्य की चेतना नीचे की ओर गिर जाती है। मनुष्य का पतन होता है। इसलिए पहला योग अंग शिवानन्द जी के योग में है सेवा, स्वार्थवृत्ति को परमार्थ में बदलना, कर्म की अभिव्यक्ति को परिवर्तित करना।

दूसरा अंग है, प्रेम। वह प्रेम नहीं जो आप और हम अभी अनुभव कर रहे हैं। हम जिस प्रेम का अनुभव कर रहे हैं, वह प्रेम नहीं, वासना है, क्योंकि उससे प्रभावित

होकर हम उसको पाना चाहते हैं, उससे जुड़ना चाहते हैं, एक सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं, जिस रूप में भी हो, चाहे माता-पिता के रूप में हो, भाई-बहन के रूप में हो, जिस रूप में भी हम अपनी भावना को व्यक्त करें, वह एक सम्बन्ध को दर्शाती है, और सम्बन्ध हमेशा आसक्ति, ममता, मोह या वासना से प्रेरित होता है। हम लोगों ने जीवन में जिस प्रेम का अनुभव आज तक किया है, वह हमारे जीवन की वासना है, प्रेम नहीं। प्रेम की अनुभूति तभी होती है, जब व्यक्ति की चेतना सार्वभौमिक हो उठती है।

एक उदाहरण मैं देता हूँ आपको। जब श्री स्वामीजी रिखिया में जाकर पंचाग्नि साधना कर रहे थे, तब दस वर्षों तक वे किसी से नहीं मिले थे, और कहते थे कि मुझे अकेले रहने दो। एक दिन जब वे साधना कर रहे थे तो अचानक बीच में उठे और अपनी एक संन्यासी शिष्या, स्वामी सत्यसंगानन्द, जो आज रिखिया में शिवानन्द मठ के कार्यों का संचालन कर रही हैं, उनको बुला कर कहते हैं कि अभी-अभी मुझे दिखलाई दिया कि यहीं आस-पास के गाँव में किसी परिवार का मकान जल गया है। घर का आदमी जल कर मर चुका है, उसकी औरत तीन छोटे बच्चों को लेकर बाहर खड़ी है। रहने के लिए कोई जगह नहीं, न खाने को कुछ है। उसका पता लगाओ और उसके लिए, उसके बच्चों के लिए पूरी व्यवस्था करो। बरसात के दिन हैं, एक सप्ताह के भीतर उसका मकान बनना चाहिए। उस महिला को खोजने में चार दिन लगे। वास्तव में उसका मकान जला था, उसके पति का

देहान्त हो चुका था, वह एक पेड़ के नीचे बरसात में अपने तीन छोटे बच्चों के साथ रहती थी। उसके पास न खाने-पीने को कुछ था, न शरीर ढकने को, न बच्चों के लिए कुछ था।

जब ऐसी घटनाओं को देखते हैं और विचार करते हैं, तो हमको ऐसा लगता है कि जब एक दु:खी की पुकार अन्तरात्मा से निकलती है और ईश्वर तक पहुँचती है तब ईश्वर उस पुकार को उस व्यक्ति की ओर मोड़ देते हैं, जो उसकी मदद कर सकता है। जैसे आज अगर आप भारत के राष्ट्रपति को अपनी समस्या के बारे में पत्र लिखिएगा, तो वह क्या करेगा? आपके पत्र को उस विभाग को भेज देगा, जहाँ से आपकी सहायता हो सकती है, और आपको पत्र मिलेगा कि राष्ट्रपति जी ने आपके पत्र पर विचार करके विभाग में भेज दिया है। वैसा भगवान भी करते हैं, जब दु:खी की अन्तरात्मा की पुकार उन तक पहुँचती है, तब उस पुकार को वे उस ओर दिशान्तरित कर देते हैं, जहाँ से उसको सहायता मिलेगी। तो यह जो संभव होता है, जिसमें भगवान के साथ एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है या दु:खियों के साथ एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, यह हृदय की कलुषता से नहीं, बल्कि हृदय की पवित्रता से होता है। और हृदय की पवित्रता में ही प्रेम की उपज होती है। हृदय की कलुषता में वासना की उत्पत्ति और हृदय की पवित्रता में प्रेम की उत्पत्ति होती है। अत: जिसको हम प्रेम कहते हैं, वह एक शुद्ध, पवित्र अवस्था है भावनाओं की, जो ईश्वर से जुड़ी हैं और ईश्वर के माध्यम से पूरे संसार से जुड़ी हैं।

तीसरा योगांग है, दान, देने की क्षमता को विकसित करना। मनुष्य की जो स्वाभाविक वृत्ति है, वह देने की नहीं, संग्रह करने की वृत्ति है। हर व्यक्ति संग्रह करता है। संग्रह करने के लिए वह मारपीट भी कर सकता है, किसी चीज को पाने के लिए वह अपने संयम को खो सकता है। अगर मनुष्य अपनी चेतना को शुद्ध करना चाहता है, तो इस वृत्ति पर विजय पाना आवश्यक है। संग्रह वृत्ति में परिवर्तन लाने के लिए भारत के मनीषियों ने जिस पद्धति के बारे में चिन्तन किया था, वह पद्धति है दान की। संग्रह में कभी संतोष मिलता नहीं है, हमेशा अतृप्ति रहती है और जब हम देते हैं तो उसमें जो संतोष मिलता है, उसमें तृप्ति ही रहती है। इसलिए हमारे जीवन का उद्देश्य है, देना। वैदिक परम्परा में भी देने का ही प्रावधान हमेशा था, हर व्यक्ति एक-दूसरे को दिया करता था। लेन-देन का हमेशा एक संतुलन रहा है। इसी उद्देश्य से अपने पास जो है, हमारे जीवन में जो सुख, समृद्धि, संतोष, उपलब्धि और पूर्णता है, वह हम दूसरों के साथ बाँटें।

चौथा अंग है, आन्तरिक पवित्रता। जब मनुष्य सेवा, प्रेम और दान के द्वारा अपनी सभी वृत्तियों पर काबू पा लेता है, तब उसकी अन्तरात्मा पवित्र हो उठती है। उसका मन नहीं, अन्तरात्मा पवित्र हो उठती है। अभी तक पवित्रता की जितनी बात हुई, वह मन की पवित्रता थी, अब अन्तरात्मा पवित्र हो उठती है। अन्तरात्मा

की पवित्रता का मतलब कि अब जीवन के दोष उस जाग्रत अन्तरात्मा को प्रभावित नहीं कर सकते हैं, उसे काला नहीं कर सकते हैं, वह हमेशा जाग्रत और स्वयं प्रकाशित रहती है। इसके बाद अच्छाई जीवन में अपना घर बना लेती है। शील, दम, श्रम, संतोष, शान्ति, दान, दया, सत्य, ये सब इस जीवन को अपना घर बना लेते हैं। जब उनका आवास यह शरीर हो जाता है, तब इसकी जो भी अभिव्यक्ति होती है, वह अच्छी ही होती है। इसलिए पवित्रता के बाद पाँचवें और छठे आयाम में स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं, अच्छा बनो और अच्छा करो।

जब जीवन की सभी अभिव्यक्तियाँ सहज रूप से, अच्छे तरीके से होने लगती हैं, तो शिवानन्द योग के सातवें सोपान में फिर ध्यान की चर्चा आती है। लेकिन यह ध्यान अब मन को नियंत्रित करने वाली प्रक्रिया का अंग नहीं है, बल्कि अपने जीवन में तन्मयता का अनुभव करने की प्रक्रिया है। तन्मयता उस अवस्था को कहते हैं, जब हर प्रकार के भेद-भाव मिट जाते हैं और आत्म-भाव से व्यक्ति दूसरे से जुड़ जाता है। तन्मयता का मतलब होता है, जिस चीज से सम्बन्ध है, उसमें पूरा का पूरा रम जाना। उसी तन्मयता से फिर प्राप्ति होती है आत्मज्ञान की, जो शिवानन्द योग का आठवाँ और अंतिम सोपान है।

यही स्वामी शिवानन्द जी का अष्टांग योग है, जिसकी शिक्षा श्री स्वामीजी ने रिखिया में अपनी साधना, अपने आचरण, अपनी जीवन-पद्धति द्वारा हमलोगों को दी है। जब उनकी इस शिक्षा को हम देखते और समझते हैं, तब मालूम पड़ता है कि हाँ, पातंजल योग के बाद भी जीवन जीने की एक कला है, जिसकी शिक्षा हमें प्राप्त करनी चाहिए। केवल अनुशासन में ही मनुष्य जिये, यह पर्याप्त नहीं है। अनुशासन तो होना ही चाहिए, किन्तु अनुशासन के अतिरिक्त जीवन की मर्यादाओं और कर्तव्यों का भी सही रूप से पालन करना चाहिए। यह योग की शिक्षा है, जो इस युग के लिए आज प्रासंगिक है। केवल पातंजल योग इस युग के लिए प्रासंगिक योग नहीं है, बल्कि इस पातंजल योग को जीवन की सभी अभिव्यक्तियों के साथ जोड़ कर, जीवन को सुन्दर बनाते हुए हमें आगे बढ़ना है।

इसी योग की शिक्षा को प्रसारित करने का संकल्प स्वामी शिवानन्द जी ने अपने शिष्यों को दिया, और यही संकल्प अब हम लोगों को एक दिशा प्रदान कर रहा है और इसी योग को आत्मसात् करने की आवश्यकता है। आज योग के द्वारा हमें ऐसे मनुष्य चाहिए, जो अपनी उपलब्धि के लिए दूसरों को दु:ख न दें। मनुष्य को अपने जीवन में योद्धा नहीं होना है, क्योंकि योद्धा अगर कभी विजय को प्राप्त करता है, तो दूसरे का खून बहाकर, अनेकों को दु:ख देकर। जीवन में अगर कुछ बनना है, तो किसान बनो ताकि तुम अच्छी फसल लगाना सीख सको, अच्छी उपज के लिए प्रयास कर सको, जिससे सभी को तृप्ति होगी, संतोष होगा और सुख मिलेगा, किसी को दु:ख नहीं होगा। यही योग का अमर संदेश है।

यौगिक जीवनशैली और सकारात्मकता

स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती

रोटरी क्लब, पटना द्वारा 22 नवम्बर 2020 को उक्त विषय पर आयोजित वेबिनार में दिये गए व्याख्यान से उद्धृत

वर्तमान परिस्थिति में यह जानने-समझने का अवश्य प्रयास करना चाहिए कि हम किस प्रकार योग को एक जीवनशैली के रूप में आत्मसात् कर सकते हैं और अपने जीवन के साथ-साथ अपने परिवार और अपने समाज को भी उन्नत और सकारात्मक बना सकते हैं।

सबसे पहले हम इस प्रश्न से प्रारंभ करते हैं कि योग है क्या? वर्तमान दौर में योग की अनेक परिभाषायें हैं और लोग योग को अनेक रूप से देखते-समझते हैं। प्राय: इसका शारीरिक पक्ष ही उजागर होता है। लोग टी.वी. में आसन देखते हैं और उसी को सम्पूर्ण योग मान लेते हैं। हमारी परम्परा ऋषिकेश के स्वामी शिवानंद जी से प्रारम्भ होती है, और उनका मानना था कि योग ऐसी विद्या और विज्ञान है जो मनुष्य की तीन मुख्य प्रतिभाओं – बुद्धि, भावना और कर्म को विकसित करता है, समायोजित करता है, उन्नत बनाता है। इस दृष्टि से देखें तो योग एक व्यापक विद्या है जिसका हमारे जीवन के हर आयाम से संबंध है, चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक, भावनात्मक अथवा आध्यात्मिक। योग इन सभी आयामों को एक सुन्दर, सकारात्मक, समग्र रूप देता है, जिससे हम अपने जीवन में उत्कृष्ता को अभिव्यक्त कर पाते हैं। देखा जाए तो सकारात्मकता और योग पर्यायवाची हैं। योग एक ऐसी पद्धति है जो हमें नित्य-निरंतर बुराई से अच्छाई की ओर, तमस् से सत्त्व की ओर ले जाती है। जीवन में सात्त्विकता और सकारात्मकता लाने का प्रयास ही एक सच्चे योग साधक और योग प्रेमी की पहचान है।

योग के दो पक्ष

योग के दो मुख्य पक्ष हैं, अभ्यास और जीवनशैली। अभ्यास वह पक्ष है जिसमें हम योग की किसी विधि को अपनाकर उसका दीर्घकाल तक निरंतर अभ्यास करते हैं और उसका हमारे शरीर पर, मन पर, हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर एक सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। दूसरा है जीवनशैली पक्ष, जिसका तात्पर्य उन सभी अनुभवों और क्रिया-कलापों से है जो हम पूरे दिन की अवधि में करते हैं। इसके अंतर्गत हमारी सजगता, हमारी आदतें, हमारे दृष्टिकोण, व्यवहार, विचार, कर्म, सोना-जागना, भोजन करना, हमारे पारिवारिक और सामाजिक सम्बन्ध, हमारी आर्थिक स्थिति, सब कुछ आते हैं। जो भी चीज हमारे दैनिक जीवन को प्रभावित करती है, वह हमारी जीवनशैली का अंग है, और उसे उन्नत एवं सकारात्मक बनाना यौगिक जीवनशैली का लक्ष्य है। योग के ये दोनों पक्ष व्यक्ति को योग का पूर्ण लाभ दिलाने में सहायक होते हैं।

योग के लाभ तीन स्तरों पर दिखलाई देते हैं। पहला है शारीरिक स्तर, जहाँ पर शारीरिक स्वास्थ्य, आरोग्य, ऊर्जा और रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित होती है। दूसरा असर हमारे मानसिक और भावनात्मक स्तर पर होता है। मानसिक शांति और भावनात्मक संतुलन की प्रप्ति होती है जिससे जीवन में स्पष्टता और सकारात्मकता आती है, हम जीवन के प्रति आशावादी बनते हैं, जीवन में आनन्द मिलता है, हमारी रचनात्मकता बढ़ती है, हम जीवन के हर पहलू में एक उत्कृष्ट अभिव्यक्ति कर पाते हैं। तीसरा स्तर है आध्यात्मिक, जहाँ व्यक्तित्व में सुन्दर सद्गुण और जीवन में एक आध्यात्मिक संस्कृति विकसित होती है।

जीवनशैली के व्यावहारिक पहलू

यौगिक जीवनशैली को अभी तक हमने आपके सामने सैद्धान्तिक तौर पर रखा है, अब इसके कुछ व्यावहारिक पहलुओं की चर्चा करते हैं जिन्हें हम वास्तव में अमल में ला सकें और अपने जीवन में एक ठोस रूपांतरण, एक सकारात्मक परिवर्तन देख सकें।

सजगता

यौगिक जीवनशैली के अंतर्गत जो पहली चीज आती है वह है सजगता। यह पहली आवश्यकता है कि हम सजग बनें, अभी हमारा जीवन कैसा है, हममें क्या कमियाँ हैं, हम किस दिशा में जा रहे हैं, किस दिशा में जाना चाहते हैं? इसके लिये अपने जीवन के बारे में सजगता और समझ का होना आवश्यक है। सजगता केवल यौगिक क्षेत्र में ही नहीं, जीवन के हर क्षेत्र में काम आने वाली प्रतिभा है। विद्यार्थी को पढ़ाई करने के लिये, गृहिणी को अपनी घर-गृहस्थी चलाने के लिये,

व्यवसायी को व्यवसाय चलाने के लिये सजगता तो चाहिए ही। सरल शब्दों में सजगता को हम यूँ समझ सकते हैं कि किसी चीज के दिखाई देने में और किसी चीज को देखने में जो अन्तर है वह सजगता है। हमारी आँखें भले ही खुली हों, हमें बहुत-सी चीजें दिख भी रही हों, लेकिन अगर हम सजग नहीं हैं तो हम उन चीजों के प्रति चेतन नहीं रहते।

अगर हम ईमानदारी से थोड़ा विचार करें कि हम दिनभर कितनी देर सचमुच सजग रहते हैं तो हम पायेंगे कि वास्तव में हमारी सजगता का स्तर बहुत ऊँचा नहीं है। हम अधिकांश समय यांत्रिक तरीके से जीते हैं, अपने बाह्य वातावरण के प्रति सजग नहीं रहते। अगर बाह्य वातावरण के प्रति भी सजग नहीं हैं तो अपने आंतरिक वातावरण के प्रति सजग रहना तो दूर की बात हुई। इसी सजगता को विकसित करना योग का मुख्य ध्येय है। इसका प्रारम्भ होता है आस-पास की चीजों, विभिन्न इंद्रिय-विषयों, अपने शरीर के प्रति सजग होने से। योग में आसन-प्राणायाम जैसे जितने भी अभ्यास किये जाते हैं उनका एक मुख्य प्रयोजन यही है कि हमारी सजगता का स्तर बढ़े, हमें पता चले कि हम अभ्यास कर रहे हैं। अगर हम कलाइयों को घुमाने जैसा कोई सरल-सा अभ्यास भी कर रहे हों तो उसमें भी हम सजग रहें कि क्या क्रिया हो रही है, कहाँ खिंचाव हो रहा है, उसका हमारे शरीर पर कैसा प्रभाव पड़ रहा है। फिर इस सजगता को धीरे-धीरे सूक्ष्म बनाकर शरीर से मन और भावनाओं के स्तर पर लाया जाता है – मन में क्या चल रहा है, कौन-से विचार या भाव उठ रहे हैं? जब सजगता की यह प्रतिभा विकसित कर ली जाती है तब फिर हम यौगिक जीवनशैली के अन्य पक्षों पर चर्चा कर सकते हैं, उन्हें उपयोग में ला सकते हैं।

संयम और अनुशासन

यौगिक जीवनशैली का दूसरा पहलू है संयम और अनुशासन। यदि जीवन में संयम और अनुशासन न रहे तो हमारा जीवन उस रथ की तरह हो जाता है जिसके घोड़े बेकाबू हैं। संयम और अनुशासन जीवन के हर पहलू में उतरना चाहिये, और जब ऐसा होने लगेगा तो हम पायेंगे कि हम योग के लाभों को वास्तव में जीवन में अनुभव कर रहे हैं। संयम और अनुशासन के व्यावहारिक प्रयोग के कुछ उदाहरण देते हैं। पहली चीज लें तो वह है सोने और जागने की। हम अपने जीवन पर एक नज़र डालकर देखें कि किस समय सोते हैं, किस समय जागते हैं। यदि हमारा सोना और जागना संयमित नहीं है, हम देर रात तक टी.वी. या सोशल मीडीया देखते हैं तो स्वाभाविक रूप से अगले दिन सबेरे जल्दी नहीं उठ पायेंगे। नींद की गुणवत्ता भी अच्छी नहीं रहेगी। सबरे उठेंगे तो ऊर्जा नहीं होगी, आलस लगेगा। पूरा दिन उसी तरीके से गुजरेगा, और फिर यह एक दुष्चक्र बन जाता है।

हमें अपने गुरु, स्वामी निरंजनानंद जी के संबंध में एक दृष्टांत याद आता है। पिछले वर्ष आश्रम के एक संन्यासी का प्रस्थान हो रहा था दक्षिण अमेरिका में एक योग यात्रा के लिये। जाने से पहले उन्होंने स्वामीजी से पूछा कि दक्षिण अमेरिका के अनेक देशों में योग कार्यक्रम संचालित होंगे, उन लोगों के लिये आपका कोई संदेश है क्या? स्वामीजी ने कहा, 'हाँ, एक संदेश है। उन लोगों से कहना कि प्रतिदिन सबेरे सूर्योदय देखने का प्रयास करें।' कोई गूढ़ दर्शन की बात नहीं, बस एक छोटा-सा जीवनशैली से सम्बन्धित सूत्र। जब यह सूत्र दक्षिण अमेरिका के अनेक देशों के लोगों के सामने रखा गया तो उन्होंने इसे एक ब्रह्मवाक्य के रूप में लिया और वास्तव में कुछ दिन करके देखा और पाया कि पूरी दिनचर्या बदल गयी। मानसिकता और दृष्टिकोण में परिवर्तन आ गया इतने छोटे-से सूत्र से।

कुछ ऐसा ही संकेत श्रीमद् भगवद्गीता में भी मिलता है, जहाँ पर योग के जीवनशैली पक्ष पर प्रकाश डाला गया है –

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥6.17॥

यहाँ एक युगल शब्द आया है स्वप्न और अवबोध, मतलब सोना और जागना। क्या वह युक्त है, क्या वह उचित है, क्या वह यौगिक है? इसी तरह से सोने-जागने के अलावा हमारे समस्त आहार-विहार के बारे में संकेत है। हमारा आहार युक्त है क्या? हम किस समय खाते हैं, किस मात्रा में खाते हैं? आहार में संयम और अनुशासन है या नहीं? हमारा विहार कैसा है? आजकल लोग नदी किनारे या बाग-बगीचे में कम, सोशल मीडिया पर ज्यादा विहार करते हैं। क्या हम अपने लैपटॉप या मोबाइल पर घंटों समय व्यतीत करते हैं या कुछ संयम उसमें लगा सकते हैं?

हमारे गुरु, स्वामी निरंजनानंद जी कहते हैं कि व्यक्ति को सप्ताह में कम-से-कम एक दिन डिजिटल उपवास करना चाहिये। एक दिन के लिये आपके जितने भी डिजिटल उपकरण हैं – टी.वी., मोबाइल, आई पैड, लैपटॉप – सबको बगल में रख दें और अपने परिवार के साथ, अपनी हौबीज़, अपनी रुचियों के साथ कुछ

सकारात्मक, रचनात्मक समय व्यतीत करें। आप पायेंगे कि इससे आपकी जीवन शैली, आपके दृष्टिकोण पर एक गुणात्मक असर पड़ता है। आखिर जीवनशैली है क्या? हमारा जीवन है क्या? जो हम अपने मन में जीते हैं। मन में जो कुछ हो रहा है, परिस्थितियों के प्रति जो प्रतिक्रियायें हो रही हैं, भाव उठ रहे हैं, विचार उत्पन्न हो रहे हैं वही हमारे जीवनशैली को निर्धारित करते हैं। बाहर की परिस्थितियों को तो शायद हम बदल न सकें, लेकिन अपने दिल-दिमाग में होने वाली चीजों में तो हम कुछ फाइन- ट्यूनिंग, कुछ समायोजन ला सकते हैं। यही फाइन-ट्यूनिंग यौगिक जीवन शैली की परिचायक है, जिसके बारे में हमारे गुरुजी कहते हैं कि योग को क्षण-प्रतिक्षण जीना है। जब हम योग को क्षण-प्रतिक्षण जीने लगते हैं तो स्वाभाविक रूप से हम सकारात्मक और रचनात्मक बनते हैं। हम जीवन की अच्छाई से, सद्गुणों से जुड़ते हैं और फिर उसका प्रभाव अपने व्यवहार, स्वभाव, विचारधारा, सजगता और समझ में, अपने पूरे जीवन में निश्चित रूप से दिखलाई देता है।

संयम के बारे में एक और बात। यह स्वामीजी का एक व्यावहारिक सूत्र है जीवन में संयम लाने का, क्योंकि अक्सर न चाहते हुए भी हम स्वयं को अनेक अनावश्यक गतिविधियों में उलझा लेते हैं। एक बार उलझ गये तो उसी में समय नष्ट हो गया। मान लीजिये हम टी.वी. नहीं देखना चाहते हैं पर टी.वी. पर कोई रोचक फिल्म आ गई और हम उसी को देखने लग गये। अब देखने लग गये तो दो-तीन घंटे निकल गये। मन के ऐसे अनावश्यक भटकाव को सम्भालने के लिए एक तो सजगता काम में आयेगी और साथ ही संयम का एक छोटा-सा सूत्र। कुछ भी शुरू करने से पहले अपने आप से एक प्रश्न कर लें – क्या वास्तव में मुझे यह चीज चाहिये? क्या सचमुच मुझे इसकी जरूरत है?

अभ्यास के साथ यह आपकी बुद्धि की एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया बन जायेगी। मन किसी भी चीज में आपको संलग्न करने के लिये प्रेरित करेगा तो साथ ही आपका यह विवेक आपसे यह प्रश्न करेगा। यहाँ आपकी वह सजगता काम आयेगी जिसे आपने पहले बिन्दु के अंतर्गत अपने जीवन में धीरे-धीरे विकसित किया है। आप सजग रह पाते हैं कि मेरा मन अभी इस समय मुझे कहाँ ले जा रहा है, टी.वी. या सोशल मीडिया देखने के लिये। आप स्वयं से पूछते हैं, क्या यह जरूरी है? अगर प्रश्न का ठोस उत्तर नहीं मिल पाया तो आपको मालूम पड़ गया यह मेरी प्राथमिकता नहीं है, मुझे कुछ और करना है। इस प्रकार आपने मन के भटकावपूर्ण व्यवहार पर संयम का अंकुश लगा दिया। यह अंकुश आपकी संकल्प शक्ति को दृढ़ करेगा। जब ऐसी परिस्थिति दुबारा आयेगी तो आपमें अधिक सामर्थ्य और आत्मविश्वास होगा कि अपने आपको संयमित कर सकें।

संयम का अर्थ दमन नहीं है। यहाँ स्वयं को दमित करने की बात नहीं हो रही है, केवल यह विवेक लगाने की बात हो रही है कि हम जो कर रहे हैं या करने जा

रहे हैं वह वास्तव में हमारे लिये लाभकारी और उपयोगी है या नहीं? यह मात्र एक सैद्धान्तिक सूत्र नहीं, एक व्यावहारिक विधि है, जो नियमित अभ्यास से विकसित होगी। आज से ही इस सरल किंतु प्रभावी सूत्र को अमल में लाकर देखिये, लाभ और सफलता आप ही की होगी।

यौगिक जीवनशैली के यम और नियम

तीसरा बिंदु है यम और नियम का। यम और नियम के बारे में जब लोग सुनते हैं तो वे प्राय: राज योग में वर्णित सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि यम और नियम के बारे में सोचना शुरू करते हैं। चूँकि ये यम-नियम कठिन व्रत लगते हैं लोग इन्हें मात्र नैतिकता और सदाचार की शिक्षा समझ लेते हैं और योग के इस पक्ष की उपेक्षा कर देते हैं।

स्वामी निरंजनानंद जी ने योग के इसी उपेक्षित पक्ष को उजागर करना शुरू किया है, विशेषकर बिहार योग परंपरा के योग के दूसरे अध्याय के प्रारंभ के बाद। सन् 2013 में बिहार योग परंपरा की स्वर्ण जयंती मनाई गई थी और उस समय स्वामीजी ने घोषित किया था कि अब योग को इसके दूसरे अध्याय, इसके दूसरे आयाम तक ले जाने का समय आ गया है। अभी तक लोग योग को केवल शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक शांति प्राप्त करने के लिये प्रयुक्त करते आये हैं। यह अपनी जगह ठीक है, लेकिन योग की पहुँच तो और गहन है, वह हमारे पूरे जीवन से संबंधित है। अब योग को जीवन में उतारना है, क्षण-प्रति- क्षण जीना है। यही योग के दूसरे अध्याय का लक्ष्य है, उसकी चुनौती है। इसके लिये स्वामीजी ने यौगिक जीवन शैली पक्ष के कुछ यम और नियम निर्धारित किये हैं, जो जीवन में सकारात्मकता लाने के सशक्त माध्यम बनते हैं। ये हमारे मन के व्यवहारों और अभिव्यक्तियों को धीरे-धीरे सकारात्मकता की ओर मोड़ते हुए हमारे भीतर अधिक प्रसन्नता, सृजनात्मकता और संतोष लाते हैं।

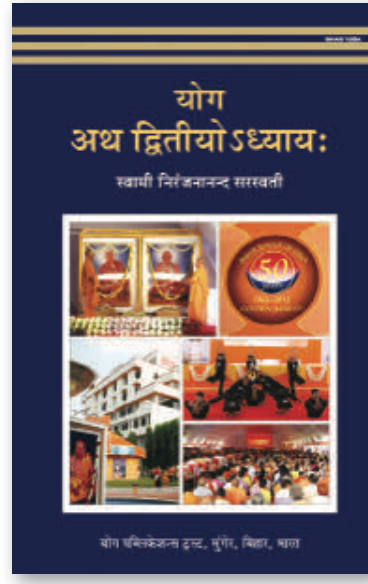

मन:प्रसाद

जीवनशैली के अंतर्गत पहला यम है मन:प्रसाद यानि प्रसन्नता का। लोग प्राय: यही कहते हैं कि आप हमें प्रसन्न रहने के लिये कह रहे हैं, लेकिन आपको क्या

मालूम हम पर क्या बीत रही है! व्यवसाय में घाटा हो गया, लड़की की शादी नहीं हो रही है, यह समस्या है, वह समस्या है। पर वास्तव में प्रसन्नता और आनंद का बाह्य परिस्थितियों से कोई लेना देना नहीं है। प्रसन्नता तो मन की एक अवस्था है, हमारे हृदय की एक अभिव्यक्ति है। बाहरी परिस्थिति पर हमारा भले ही वश न हो, वह अनुकूल हो या प्रतिकूल, लेकिन हमारा मानसिक व्यवहार और मानसिक अवस्था तो हमारे हाथ में है, हमारे बस की चीज है। बाहर जो होता है होता रहे, हम स्वयं को उससे क्यों प्रभावित होने दें?

स्वामीजी कहते हैं कि मन:प्रसाद का यम एक सुरक्षात्मक कवच की तरह कार्य करता है। दिनभर हमें दु:ख और कष्ट के जो बाण चुभते रहते हैं, उनसे यह हमारी रक्षा करता है, क्योंकि हमने एक कवच बना लिया है, मन में यह संकल्प और सजगता निरंतर है कि कुछ भी हो जाए, हम अपनी प्रसन्नता और सकात्मकता के स्तर को बनाकर रखेंगे। ठीक है, शुरू में दिनभर प्रसन्न रह पाना सम्भव नहीं, पर क्या हम पाँच मिनट से नहीं शुरू कर सकते हैं? अगर हम इनती अवधि तक प्रसन्न रह पाते हैं तो धीरे-धीरे इस अवधि को बढ़ा सकते हैं। पाँच से दस मिनट, दस से पंद्रह मिनट, और साथ ही दिन में देखते रहें कि वे कौन-सी चीजें हैं जो हमारी प्रसन्नता में बाधा डालती हैं। यह सजगता यदि रहेगी तो हम स्वयं अपने व्यक्तित्व के कुछ ऐसे पक्षों से परिचित होंगे जो हमारी कमजोरियाँ हैं, हमारे दोष हैं।

प्रतिपक्ष भावना

वहाँ पर हम योग की एक बहुत सशक्त विधि को उपयोग में ला सकते हैं, जिसे प्रतिपक्ष भावना कहा जाता है। प्रतिपक्ष यानि विपरीत। यह एक सरल-सा सूत्र है कि मन में जब भी कोई नकारात्मकता उठने लगे तो उसके विपरीत सद्गुण को उस समय मन में उजागर करें। यही वास्तविक योग साधना है जो क्षण-प्रति-क्षण सधने लगती है। जीवन की हर परिस्थिति में इसे करना सम्भव है। इसके लिये आपको किसी योगा मैट की जरूरत नहीं, जीवन के हर क्षेत्र में, यहाँ तक कि युद्धभूमि में भी आप इस योग को कर सकते हैं। यही योग श्री कृष्ण ने अर्जुन को कुरुक्षेत्र की रणभूमि में समझाया था। अपने आपको अकर्मण्यता, विषाद और निराशा से नहीं, बल्कि सद्गुणों, सत्कर्मों और सकारात्मकता से जोड़कर रखना। गीता में दैवी सम्पत् और आसुरी सम्पत् की चर्चा आयी है। वह इसी सकारात्मकता और नकारात्मकता का संकेत है। योग की यात्रा, योग का लक्ष्य यही है कि नकारात्मकता से सकारात्मकता, तमस् से सत्त्व, आसुरी से दैवी स्वभाव तक हम आयें। मन:प्रसाद की अवस्था में स्वयं को स्थित करना एक निरंतर संघर्ष की चीज है, और यदि हम यह संघर्ष कर पाते हैं तो हम पायेंगे कि हम अपनी नकारात्मकता को धीरे-धीरे घटा रहे हैं और उनके विपरीत के सद्गुणों को जीवन में ला रहे हैं।

उदाहरण के लिये, मान लीजिये कि हमें गुस्सा बहुत जल्दी आता है। एक क्षण हम खुश हैं, पर फिर किसी से कुछ अनबन हो गई, क्रोध आ गया, बात बढ़ गई, झगड़ा हो गया, और झगड़े के बाद हमारी मनोवस्था, हमारा मूड खराब हो गया, और वो मूड दिनभर खराब बना रहा। अपनी मनोवस्था को सम्भालना, अपने मूड को मैनेज करना, यही यम-नियम का प्रयोजन है। हमलोगों की मनोवस्था कितनी जल्दी बदल जाती है, प्राय: नकारात्मक हो जाती है, और उस नकारात्मक अवस्था में हम अपना ही नुकसान करते हैं। अब जिस समय क्रोध आ रहा था, हम वहाँ पर यदि कोई प्रतिपक्ष भाव लाकर उसे शमित कर पाते तो जो जीवन में उस समय एक नकारात्मकता की लहर आकर हमें बहाकर ले गयी वह नहीं होता।

क्षमा

यहाँ दूसरा यम काम में आता है, जो क्षमा का है। हमलोग अपने भीतर अगर झाँककर देखें तो पायेंगे कि अभी भी कई लोगों से मनमुटाव मन में पालकर रखा है, उन लोगों को क्षमा नहीं कर पा रहे हैं। जाने-अनजाने वह वृत्ति हमारे जीवन में नकारात्मकता घोलती रहती है। जब भी उस व्यक्ति से दुबारा भेंट होती है तो वह नकारात्मकता सामने आती है और पुन: एक नकारात्मक स्थिति बन जाती है। उस व्यक्ति से कभी दोस्ती या सामान्य व्यवहार नहीं हो पाता। शायद केवल एक छोटी-सी घटना की वजह से जो कभी अतीत में घटी।

हमारे गुरुजी इस सम्बन्ध में एक बहुत सटीक दृष्टांत देते हैं। वे कहते हैं कि मान लीजिये आपकी कीमती अंगूठी किसी दिन गलती से टॉयलेट के कमोड में गिर जाती है। क्या आप उसको फ्लश कर देंगे, या बाहर निकालना चाहेंगे? जाहिर है कि आप कमोड में हाथ डालकर भी उस अंगूठी को निकालेंगे, अच्छे से धोयेंगे, साफ करेंगे और फिर बड़ी खुशी-खुशी उसको अपनी अंगुली में पहन लेंगे। उस समय यह विचार मन में नहीं आयेगा कि यह अंगूठी कमोड में गिर गयी थी, गंदी हो गयी थी, बल्कि उस अंगूठी के साथ जो भी अच्छी यादें जुड़ी हैं वही आपके मन में रहेंगी।

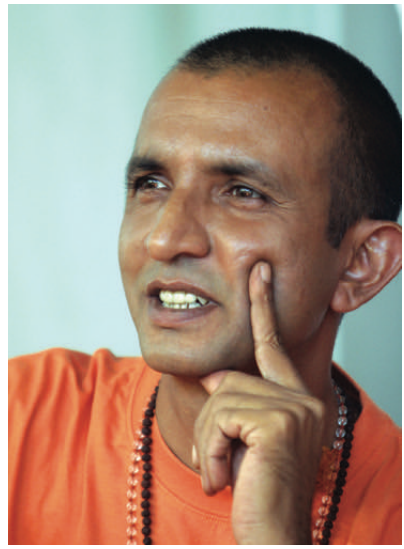

जब हम किसी जड़ चीज के साथ ऐसा समझदारी भरा व्यवहार कर सकते हैं तो अपने मित्रों और परिजनों के साथ

क्यों नहीं कर सकते? एक साल पहले किसी से झगड़ा हो गया, छोटा-सा मनमुटाव हो गया और हम आज तक उस चीज को मन में रखकर बैठे हैं। हो सकता है उस घटना में उसका उतना दोष न हो जितना हमारा खुद का दोष हो, यह भी आत्म-विश्लेषण द्वारा हमें देखना होगा। खैर, दोष जिसका भी हो, अहम बात यह है कि हमने उस व्यक्ति के साथ जो तीन सौ चौंसठ दिन अच्छे से, मित्रता के साथ बिताये थे, उनको हमने नज़रंदाज कर दिया और एक बुरे दिन का पलड़ा हमारे मानसिक तराजू में भारी हो गया। क्या यह हमारी समझदारी और बुद्धिमानी दिखलाता है? क्या यहाँ वह अंगूठी वाला दृष्टांत नहीं ला सकते? उस एक बुरे दिन को देखने की बजाय क्या हम उन तीन सौ चौंसठ अच्छे दिनों को देखकर उस व्यक्ति को क्षमा नहीं कर सकते? आखिर हमने उस अंगूठी के एक बुरे गुण को नज़रंदाज तो किया न जब वह टॉयलेट में गिर गयी थी?

अच्छाई और सकारात्मकता

यही दृष्टांत अपने जीवन में उतारना है। संक्षेप में यही सकारत्मकता की साधना है, यही यौगिक जीवनशैली है। मन तो बार-बार नकारात्मक चीज पर ही जायेगा, वह मन का स्वभाव है, पर अब इस उछृंखल मन को हमें प्रशिक्षित और संयमित करना है। यह प्रशिक्षण और संयम ही यौगिक जीवनशैली की साधना है, निरंतर मन को नकारात्मकता से सकारात्मकता की ओर लाते रहना। अच्छाई की ओर नित्य प्रयासरत रहना, यह अनादि काल से हमारी भारतीय संस्कृति की आधारशीला रही है। रामचरितमानस में भी आप पायेंगे कि तुलसीदास जी कहते हैं –

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥

भगवान के बनाए इस संसार में गुण और दोष, अच्छा और बुरा दोनों हैं। अब यह हमारे ऊपर है कि हमारा ध्यान कहाँ जाता है, हम किस पर ज्यादा केन्द्रित होते हैं। जो संत हैं, सज्जन हैं, वे उस राजहंस की तरह होते हैं जो दूध तो पी लेता है और पानी को छोड़ देता है। उस हंस जैसा विवेक हमलोगों को अपने जीवन में लाना है, जिससे हम नकारात्मकता रूपी पानी को छोड़ दें और सकारात्मकता रूपी दूध को ग्रहण करें। यही यौगिक जीवनशैली का रहस्य है।

हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानंद जी का एक मूल मंत्र था – अच्छा बनो, अच्छा करो, और स्वामी निरंजनानन्द जी ने अब योग के दूसरे अध्याय का जो कार्यक्रम शुरू किया है उसमें वे अच्छाई को ही जीवन में उतारने के सटीक, व्यावहारिक, वैज्ञानिक तरीके विकसित कर रहे हैं और समाज के उत्थान के लिये व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत कर रहे हैं। इसमें प्राथमिक है प्रसन्न रह पाना, चाहे विपरीत परिस्थिति

क्यों न हो। आखिर आनन्द का स्रोत तो हमारे भीतर है, उससे ही जुड़ना है। यह विवेक लाना है कि वास्तविक आनंद विषयों के सुख में नहीं, आत्मिक सुख में है। जब धीरे-धीरे हम अपनी चेतना को बाहर से समेटकर अपने भीतर ला पाते हैं, अपने भीतर की अच्छाई और प्रकाश से जोड़ते हैं तो जीवन में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन अनुभव कर पाते हैं।

यौगिक कैप्सूल

अभी तक तो जो चर्चा हुई वह ऐसी विधियों की थी जो एक तरह से पूरे दिनभर चलने वाली निरंतर साधना है, चाहे वह सजगता की साधना हो, चाहे संयम की हो, चाहे यम-नियम की हो। अंतिम चीज है दिनचर्या के अलग-अलग समय पर योग के अभ्यासात्मक पक्ष को सम्मिलित करना। ऐसा करने से अभ्यास भी फिर जीवन शैली के साथ ऐसे घुल-मिल जाता है जैसे दूध और पानी। सामान्यतया लोगों में यह भ्रांति रहती है कि योग अभ्यास के लिये बहुत समय निकालना पड़ेगा। लेकिन योग को साधने के लिये बहुत अधिक समय लगाने की जरूरत नहीं है। दिन के अलग-अलग समय योग के छोटे-छोटे कैप्सूल पर्याप्त हैं। जिस तरह से आप अपने स्वास्थ्य के लिये दिन में अलग-अलग गोलियाँ और कैप्सूल लेते हैं, वही दृष्टांत अपने जीवन में योग के साथ लागू करना है। योग को भी कैप्सूल के रूप में सेवन करेंगे तो उसमें अधिक समय नहीं लगेगा और उसका असर भी ज्यादा होगा। अब हम योग के पाँच कैप्सूल की चर्चा करेंगे जिनको स्वामी निरंजनानन्द जी हर व्यक्ति के लिये उपयोगी और आवश्यक बताते हैं।

मंत्र – पहला कैप्सूल है मंत्र का। लोग मंत्रों को प्राय: धर्म के साथ जोड़ देते हैं, लेकिन यौगिक परम्परा में मंत्रों को स्पंदनों के, ध्वनि के विज्ञान के रूप में लिया गया है। ये स्पंदन हमारे अस्तित्व के एक ऐसे आयाम को प्रभावित करते हैं जहाँ पर और किसी चीज की पहुँच नहीं। मंत्र कैप्सूल में तीन सरल से मंत्र हैं – महामृत्युंजय मंत्र, गायत्री मंत्र और दुर्गा जी के बत्तीस नाम। इन मंत्रों का एक सकारात्मक संकल्प के साथ जप किया जाता है। महामृत्युंजय मंत्र का जप किया जाता है स्वास्थ्य और आरोग्य के संकल्प के साथ, गायत्री मंत्र का जप किया जाता है मानसिक प्रतिभाओं के विकास के लिये और दुर्गा जी के बत्तीस नामों का पाठ किया जाता है जीवन की दुर्गतियों और समस्याओं के निवारण के संकल्प के साथ। महामृत्युंजय मंत्र का 11 बार, गायत्री मंत्र का 11 बार और दुर्गा जी के बत्तीस नामों का तीन बार पाठ करने में 5-7 मिनट से ज्यादा समय नहीं लगता। इतना समय तो हर कोई निकाल ही सकता है।

इस कैप्सूल का सेवन कीजिये सबेरे जागते ही, जिस समय आपकी नींद खुलती है। इसके लिये शय्या त्यागने की भी जरूरत नहीं, मुँह-हाथ धोने की भी जरूरत

नहीं। बासी मुँह ही बिस्तर पर बैठकर इन मंत्रों का जप कर लीजिये। इसके पीछे एक वैज्ञानिक कारण है। जिस समय आप जागते हैं उस समय आपका अवचेतन मन सक्रिय रहता है। न आप पूरी तरह जगे हैं, न पूरी तरह सोये हैं। उस समय जब आप संकल्प लेकर मंत्र का उच्चारण करते हैं तो वह आपके अवचेतन मन में बीज रूप में प्रविष्ट होता है। कालान्तर में वह बीज अंकुरित होता है और जीवन में एक सकारात्मक परिवर्तन लाता है। यह अन्य साधनों से सम्भव नहीं, क्योंकि हमारा चेतन मन हमारी आदतों को बदलने में सक्षम नहीं है। हम सब जानते हैं कि सिगरेट पीना अच्छी चीज नहीं है, लेकिन अगर सिगरेट की आदत है तो छोड़ नहीं पाते हैं, क्योंकि वह अवचेतन मन में एक आदत बन गई है, और वहीं पर हमें पुनर्नियोजन करना है।

आसन – दूसरा कैप्सूल है आसनों का। इसमें भी कोई बहुत अधिक करने की आवश्यकता नहीं है, पाँच आसन पर्याप्त हैं – ताड़ासन, तिर्यक् ताड़ासन, कटि चक्रासन, सूर्य नमस्कार और विपरीत करणी आसन। एक सामान्य व्यक्ति के लिये,

जिसे कोई स्वास्थ्य समस्या नहीं है, ये आसन पर्याप्त हैं जो शारीरिक स्तर पर योग का पूर्ण लाभ देंगे। यदि व्यक्ति की कोई स्वास्थ्य समस्या हो तो इन्हें किसी प्रशिक्षित योग शिक्षक के निर्देश में या डॉक्टर की सलाह में करना चाहिये।

प्राणायाम – तीसरा कैप्सूल है प्राणायाम का। इसमें भी दो प्राणायाम पर्याप्त हैं। पहला है नाड़ी शोधन प्राणायाम, जिसमें हम एक नासिका से श्वास लेते हैं दूसरी से छोड़ते हैं, फिर दूसरी से लेते हैं पहली से छोड़ते हैं। दूसरा है भ्रामरी प्राणायाम जिसमें हम अपने कानों को बन्द करके कण्ठ से एक भौंरे की तरह गुंजन उत्पन्न करते हैं। आसन और प्राणायाम के अभ्यास के लिये उपयुक्त समय है सबेरे जब हम जागते हैं और अपने शौच नित्यकर्म से निवृत्त हो जाते हैं, नाश्ते से पहले। किसी वजह से नहीं कर पाये तो दिन के किसी अन्य समय भी कर सकते हैं जब पेट खाली रहे।

शिथिलीकरण – चौथा कैप्सूल शिथिलीकरण का है, जिसके लिए योग में एक बहुत सशक्त क्रिया है जिसे योगनिद्रा कहते हैं। बिहार योग विद्यालय के संस्थापक, श्री स्वामी सत्यानंद जी ने इसका आविष्कार और प्रचार किया था। यह करने में बहुत सरल है, शवासन में लेटकर केवल शिक्षक के निर्देशों का मानसिक रूप से अनुपालन करते जाना है। शिक्षक के स्थान पर रिकॉर्डिंग से भी इसका अभ्यास कर सकते हैं। इसके अभ्यास का उपयुक्त समय है शाम का, जिस समय हम अपना कार्य करके घर लौटते हैं। प्राय: हमलोग अपने दफ्तर का तनाव घर में ले आते हैं, इस अभ्यास से उस तनाव का निराकरण करने का एक अवसर मिल जाता है और शरीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्तर पर गहन विश्रांती की प्राप्ति होती है।

ध्यान – पाँचवा कैप्सूल ध्यान के किसी लघु अभ्यास का है जिसे रात के समय सोने से पहले करना चाहिए। इसमें एक सरल-सा अभ्यास है अजपा जप, जिसमें शरीर के किसी विशेष भाग में श्वास की सजगता की जाती है और उसके साथ मंत्र की सजगता भी जोड़ी जाती है।

इस प्रकार अपनी दिनचर्या में इन छोटी-छोटी विधियों से हम अपने आपको नकारात्मकता से सकारात्मकता की ओर ले जाने का प्रयास कर सकते हैं। यह एक सार्थक जीवन शैली है जिसमें हम न केवल अपना उत्थान करते हैं, अपनी प्रतिभाओं का विकास करते हैं, बल्कि जो हमारे आस-पास के लोग हैं, चाहे वे हमारे परिवार के लोग हों, हमारे कार्यलय में कार्य करने वाले सहयोगी हों, उन सबके लिये भी हम एक प्रेरणा का स्रोत बनते हैं। आज के दौर में जब चारों ओर नकारात्मकता और निराशा व्याप्त होती जा रही है, यह हमलोगों पर एक और दायित्व बन जाता है कि हम अपने जीवन की बागडोर सम्भालें और उस जीवन को उन्नत, सकारात्मक तथा अन्यों के लिये उपयोगी बनायें। यही योग का संदेश है, इसी में योग की सार्थकता है।

साधना और कर्म

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

साधना के मार्ग में निष्कर्मण्यता, अर्थात् कुछ नहीं करना
बहुत बड़ी बाधा है।
निरन्तर बाह्य रूप से भी कर्म करते रहना चाहिये
अन्यथा चेतना अंधेरे लोकों में लौटने लगती है।
मन विषयों में रमने लगता है,
कार्य नहीं करने से अचेतन अवस्था सी आने लगती है।
इसलिए प्राचीन कालों में आश्रमों की व्यवस्था हुई थी,
इसलिए चेला लोगों को रगड़ा और तपाया जाता है,
ध्यान की सफलता और जीवन की पूर्णता के लिए कर्म जरूरी है।
बाह्य कर्म यदि रोक भी दिये जायें तो भी
मन के सूक्ष्म कर्म होते ही रहते हैं।
अतएव साधना के मार्ग में
बाह्य और आन्तरिक कर्मों में संतुलन आवश्यक है।
चाहे तुम धनोपार्जन के लिए निष्काम कर्म करो
अथवा नाम, यश के लिए कुछ भी किया जाये,
वह तो कर्म का आधार है, प्रयोजन नहीं,
इसे समझो और कर्म में जुट जाओ।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड – 4

अवलोकितेश्वर

पृष्ठ 234, ISBN: 978-81-949328-6-4

श्री स्वामी सत्यानन्द जी की प्रेरणा व स्वामी निरंजनानंद सरस्वती के कृपापूर्ण मार्गदर्शन में श्रीरामचरितमानस के बालकाण्ड भाग चार का शब्दानुवाद किया गया है। बालकाण्ड के इस चौथे भाग में प्रभु राम के अवतार का सुन्दर वर्णन, माँ कौशल्या के साथ बाल लीलाओं का अनुपम दृश्य एवं शिव-धनुष यज्ञ के अवसर पर राजा जनक के दरबार में रघुवंश के शौर्य एवं प्रताप का सुन्दर एवं विस्तृत वर्णन दिया गया है।

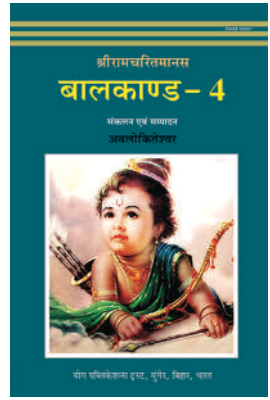

नया प्रकाशन

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 91–6344–222430, 9162783904

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net
बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद
बिहार योग परम्परा की समस्त प्रकाशित कृतियाँ *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना
biharyoga.net तथा *satyamyogaprasad.net* पर स्वस्थ जीवन हेतु यौगिक जीवनशैली साधना उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/
योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2020-23
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

सभी ग्राहकों के लिए महत्त्वपूर्ण सूचना

आत्मस्वरूप

हरि: ॐ

हमें यह सुखद समाचार देते हुए हर्ष हो रहा है कि जनवरी 2021 से मासिक योगा (अंग्रेज़ी) तथा योगविद्या (हिन्दी) पत्रिकाएँ सभी ग्राहकों, सहयोगियों, योगप्रेमियों, भक्तों तथा आध्यात्मिक साधकों के लिए निम्नांकित वेबसाइटों पर नि:शुल्क उपलब्ध रहेंगी –

www.satyamyogaprasad.net

www.biharyoga.net

वर्तमान कोरोनावायरस महामारी और उससे उत्पन्न अनिश्चितता के कारण योगा और योगविद्या की प्रकाशित प्रतियाँ 2021 में ग्राहकों के लिए उपलब्ध नहीं रहेंगी। इसलिए 2021 में इन पत्रिकाओं के लिए नए सदस्यता आवेदन या पुरानी सदस्यता को बढ़ाने के आवेदन स्वीकार **नहीं** किए जा रहे हैं। अत: इन पत्रिकाओं के लिए सदस्यता आवेदन **मत** भेजिए।

पत्रिकाओं सम्बन्धी परिस्थिति की जानकारी आपको समय-समय पर मिलती रहेगी।

इस बीच श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती और श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की शिक्षाओं को ग्रहण कर उन्हें अपनी दिनचर्या में आत्मसात् एवं अभिव्यक्त कीजिये ताकि आपका जीवन उदात्त और उन्नत बन सके।

आपके स्वास्थ्य, कल्याण और शांति के लिए श्री स्वामी सत्यानन्द जी के आशीर्वाद सहित,

ॐ तत्सत्

सम्पादक